मुद्रक–
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रि. प्रेस, खपाटिया चकला–सूरत।

प्रकाशक–
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
दि० जैन पुस्तकालय चन्दावाडी–सूरत।

भूमिका।

जैनमित्र साप्ताहिक पत्र वर्ष १६ अंक १ वीर सं० २४४८ मिती कार्तिक सुदी १ से प्रारंभ होकर जैन मित्र वर्ष १७ अंक २० वीर सं० २४४९ मिती भादों वदी २ तक हमने पाठकोंको **चेतन और कर्मके युद्धका दृश्य** दिखानेके लिये यह लेख दियाथा। इसमें गुणस्थान अपेक्षा कर्मोंके विजयका वर्णन वीर अध्यात्म रसके साथ किया गया है। जैन तत्वके मरमी इस कथनसे बहुत लाभ उठाएंगे। **श्रीमती पंडिता चंदाबाईजी** आराकी उदारता व अनेक तत्त्व प्रेमियोंकी प्रेरणासे यह निबन्ध पुस्तकाकार स्वल्पमूल्यसे प्रकाशित किये गये हैं। पाठकोंको सूचना है कि वे इसे वारंवार पढ़ें तथा इसका प्रचार करें कहीं भूल हो तो उदार विद्वान् क्षमा करके पत्रद्वारा सूचित करें।

मिती
कार्तिक सुदी ११
वीर सं० २४४९
ता. ३१-१०-२२

निवेदक-
ब्र० शीतलप्रसाद
आ० सम्पादक, जैनमित्र-सूरत।

विषय-सूची।

——(०)——

शुद्धाशुद्धि ।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	आकार	आकर
६	१	घरको	घरकी
१०	१३	प्रदेश	परदेश
१२	५	इसकी	इनकी
१५	१९	धरा अनन्ता	अनन्ता
१८	११	कारणों	करणों
२३	२	योद्धओ	योद्धाओं
२५	१६	धर्म पद्धतिसे गिरा	गिरा
२९	१५	कञ्चित्	किञ्चित्
,,	२३	जिससे	जिसके
३०	१०	लंगोटकी	लंगोटको
,,	१३	अज्ञा	आज्ञा
३१	१६	प्रमत्त	प्रमत्त विरत
,,	१८	उठी	छठी
३३	९	लज्जामान	लज्जायमान
३४	११	स्थान विचय	संस्थान विचय
,,	१९	तिया	शिव तिया
३७	२१	आशक्त	आशक्ति
४३	१५	वारह	वाहर
४५	९	किसी दशा	की सी दशा
४६	१	दूसरे	दूसरे

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१२	यहां "उसीवक्त आदि" पहले फिर. मेनता है आदि पढ़ना चाहिये १ लाइन आगे पीछे उलट गई है।	
४१	१९	साहकार	सम्हलकर
४९	१०	आतम	आत्मा
५०	१९	सत् स्वरूपी	सत् स्वरूपको
५१	७	परकाल अस्तित्व	परकालनास्तित्व
५१	१०	सेवा	सेना
५४	१८	रहा है	हो रहा है
५६	४	निम्न	निम्न फुटनोट देखो नं० २९
,,	७	साम्यक्ती	सम्यक्ती
,,	१६	उदय	हृदय
५७	३	बदल	व दल
६०	९	नौकर्म	नोकर्म
६५	१६	चेनत	चेतन
६६	७	ज्ञानरूपी	अज्ञानरूपी
,,	१९	चेतनके	चेतनकी
६७	१०	उज्जल	उज्वल
,,	२१	अंगोंमें	अंगोंकि
६८	९	वीरागता	वीतरागता

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
७०	१९	सम्क्त	सम्यक्त
७१	११	मिलाने	मिलने
७१	३	चलता है	चलाता है
७५	८	जो	जो आनन्द
"	१४	वरणी	ज्ञानावरणी
"	१७	विचार	अवीचार
७८	२	मोह....वैरी	मोह वैरीके जीवनेके लिये
८०	४	अन्त	अनन्त
"	९	ठहरा	ठहर
८१	५	निश्चग	निश्चय
"	१२	तरहा	तरह

नमः श्रीवीतरागाय ।

स्वसमरानन्द ।

(१)

अनन्त कालसे महाभयानक मोहनगरमें परतंत्रतारूपी कैदके महान दुःखोंको भोगनेवाला आत्मा अकस्मात ज्ञानी आकाशगामी किसी दयावान शक्तिशाली विद्याधरकी दृष्टिमें आजाता है उसे परतंत्रताके महान भारी कल्पनाजनक कष्टमें आकुलित देख वह विद्याधर कहता है, " रे आत्मन् ! तू क्यों अपनेको भूल गया है ? क्या तुझको मालूम नहीं कि, तू स्वतंत्र स्वभावी है ? तू निश्चयसे तीन लोकका धनी, अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुखमई है ! तेरे रमने योग्य मोक्षनगरनिवासिनी शिवतिया है ? जिस मोह राजाकी पुत्री कुमति कुल्टाके जालोंमें तू मोहित हो रहा है उसने तेरी हे चेतन ! देख कैसी दुर्दशा कर राखी है? तेरी सम्पत्ति हर ली है। तुझे कैदमें डाल रक्खा है। तू ऐसा बावला है कि उसके दिखाये हुए भ्रमात्मक-रूपमें मोहित हो उसके क्षणिक मोहमें तू अपनी सर्वथा दुर्दशा कर रहा है। मैं तेरे कष्टसे आकुलित हुआ हूं। मेरे चित्तमें तेरे ऊपर बड़ी ही करुणा आई है। मैं तुझको इस नगरसे छुड़ा सक्ता हूं। और तुझे तेरी मनोहरी सच्ची प्रेमपात्रा शिवतियासे मिला सक्ता हूं। तू कुछ शंका न कर, मोहकी सेनाको विध्वंस करनेके लिये तथा तेरे पाससे अलग रखनेके लिये मेरे पास बहुत फौज है। मैं तुझको पूर्ण सहायता

दूंगा । तू अब यह निश्चय कर कि तू अनन्त गुणी परम सिद्धकी जातिवाला है । पिंजरेमें बन्द सिंहके समान अपनी शक्तिको क्यों खो रहा है ? वृथा झूठा मोह छोड़ । भवबन्धन तोड़ । " विद्याधरके यह वचन सुन वह चुप हो रहा और कुछ उत्तर न दे सका । विद्याधरने विचार किया-अभी चलना चाहिये । एक दफेकी रस्सीकी रगड़से पत्थरमें चिन्ह नहीं बनते, इसलिये पुनः पुनः सम्बोधकर इस विचारे दीन मानवका कल्याणकर इसके दुःखोंको मिटाना चाहिये । विद्याधर जाता है । वह परतंत्र आत्मा एक अचम्भेमें आजाता है परन्तु कुछ समझता नहीं । तथापि जो अशुभ परिणतिरूपी सखी आकर उसको बातोंमें उलझाती थी उससे चित्तमें अरुचि आती जाती है तथा शुभ परिणतिरूपी सखी जो कभी २ इस आत्माको देख जाया करती है उसके दर्शन पा लेनेसे यह चित्तमें हर्षित होता है और पुनः उसके देखनेकी कामना करता है । वास्तवमें इस भवपिंजरमें पड़े पक्षीके छूटनेके लिये अब काललब्धि आगई है । इसके तीव्र कर्मोंका क्षयोपशम हुआ है । यह अब मनकी मौढ़ विचारशक्तिमें जग रहा है । क्षयोपशमलब्धि देवीने इसपर दया की है । उसीकी प्रेरणासे विद्याधरका आगमन हुआ है । साथ ही विशुद्धिलब्धि देवी अब अशुभ परिणतिरूपी सखीको पुनः पुनः इसके पास जानेसे रोक रही है और शुभ परिणतिको पुनः पुनः भेजकर इसकी प्रीति शुभ परिणतिसे वृद्धि करा रही है । धन्य है यह आत्मा, अब इसके सुधारका समय आगया है । अब इसके दुःखोंका अन्त आ गया है । अब यह शीघ्र ही अपने अनंत

बलोंकी श्रद्धाकर परमज्ञानी विद्याधर मित्रकी सहायतासे मोह शत्रु-से युद्ध करनेको तयार हो जायगा और मोहकी सेनाका विध्वंस करनेका उपाय करेगा। धन्य हैं वे प्राणी जो इस युद्धमें परिणमन करते हैं। उनके अंतरंगमें अध्यात्मिक वीररसका उत्साह आता है, और जब वह अपने गुणघाती किसी शत्रुका पराजय करते हैं तो उनके हर्षकी सीमा नहीं रहती! वे अपने आपमें परमोत्कृष्ट आत्मवीरताके रसका स्वाद ले **स्वसमरानन्दके** आमोदमें तृप्त रहते हुए दिन प्रतिदिन अपनी शक्तिको बढ़ाते चले जाते हैं और शिवनगरमें पहुँचनेके विघ्नोंको हटाते जाते हैं।

(२)

ज्ञानी विद्याधर थोड़े दिनोंके पश्चात् ही संसार ग्रसीभूत आत्माकी दुःखमई अवस्थाको विचारकर अपने आसनको त्यागता है, और मोहनगरमें आकार आकाश मार्गसे उस आत्माको देखता है। वह आत्मा इस समय एक कोनेमें बैठा हुआ अचम्भेके साथ उसी विद्याधरको याद कर करके विचार रहा है कि वह कौन था जो मुझको कुछ सुनाकर चला गया, कई दिन हुए इससे यद्यपि मुझे उसकी बातें याद नहीं है तथापि उन वचनोंकी मिष्टता और कोमलता अबतक मेरे मनको सुहावनी मालूम हो रही है। वह अवश्य मेरा कोई हितू ही होगा। अब मैं उसके मनोहर शब्दों-को फिर कब सुनूं? वह विभावपरिणतिसे परेशान आत्मा ऐसा मनन कर रहा था, कि एकायक वह विद्याधर बोल उठा, "हे आत्मन्! क्या चिन्ता कर रहा है? क्या तुझे अभीतक अपने रूपकी खबर नहीं है? तू चैतन्यपदका धारी अमल अटूट असं-

स्यात् प्रदेशी, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र, स्वस्वरूप तन्मयत्व आदि अनेकानेक गुणोंका भण्डार परम रूपवान है। तेरी शक्ति अनन्त अपार है। जो तू अपने पदकी रुचि मात्र करे तो तेरा यह कारावास अन्तपनेको प्राप्त हो जावे। देख प्यारे मित्र! मोह और उसकी कुपत्री कुमतिने तुझे ऐसा बावला बना दिया है, तेरी ज्ञान दृष्टिपर मोहनी धूल डाल दी है कि तू जहां कनक है वहां पीली मिट्टी देख रहा है। जहां अगर-वन है वहां तू बबूलवन कल्पना कर रहा है, जहां अचल अभिराम आनन्दधाम है वहां तू नर्कका मुकाम मान रहा है। जहां विषका समुद्र है वहां तू अमृतसागर जान रहा है। जहां अमृतसागर है वहां तू विषधर कल्पना कर रहा है। जो तुझे अनंत कालतक सुख देनेवाला है उसे तू दुःखदाई जान रहा है। विषयवासनामें पड़कर आज तक किसी जीवने तृप्तता नहीं पाई। हे मित्र! मेरी ओर देख" ये वचन क्या थे, मानो प्यासके लिये जलरूप थे, भूखेके लिये अन्नरूप थे। सुनते ही ऊपर देखता है परन्तु फिर भी वही आश्चर्यकी बात है क्योंकि उसकी समझमें उस विद्याधरका कथन फिर भी नहीं आया। परन्तु इसकी रुचि देखकर वह विद्याधर समझ गया कि इसके परिणामोंने अपने हितकी तरफ ध्यान दिया है और फिर उसको कहता है, "हे मित्र! तू कमर कस, मोहसे लड़, भय न कर, हम तेरी हर प्रकारसे सहायता करनेको उद्यत हैं।" अब यह समझता है और कहता है, "हे मित्र! तुम्हारे वचन मुझे बहुत ही इष्ट मालूम पड़ते हैं। कृपाकर ऐसे ही वचनोंका समागम मुझे नित्य प्रदान

करें ।" विद्याधर अपने उद्देश्यकी पूर्ति समझ कहता है, "हे मित्र ! घबड़ाओ नहीं, हम नित्य तुमको धर्मामृत पान करानेके लिये आएंगे," और तुम्हें युद्ध करने योग्य बल प्रदान करेंगे । धन्य है यह आत्मा ! इसको अब देशनालब्धिकी प्राप्ति हुई है । जिनवाणी अपना असर करती जाती है । अंतरंगमें अशुभ कर्मोंका कडुआ रस बदलता जाता है । शुभ कर्मोंका मिष्ठरस अधिक मीठा होता जाता है । यह आत्मा अवश्य एक न एकदिन मोह शत्रुसे युद्ध ठान उसको परास्तकर शिवनगरीका राज्य करेगा । धन्य है यह युद्ध जिसमें हिंसाका लेश नहीं है, जो दयामय प्राणिसंरक्षक है और जो अपनी क्रियामें परम मनोहर है । जो इस युद्धमें परिणमन करते हैं, वे अपने आप ही आत्माकी सत्य सुखदाई भूमिकामें नयानन्दोंसे अतीत स्वसमरानन्दको लभकर परम आल्हादित रहते हैं ।

(३)

धन्य है परोपकारी विद्याधर जिसके नित्य धर्मरसके दिये हुए रुचिमई भोजनसे संसारी आत्माके शरीरमें पुष्टता और साहसकी वृद्धि हो रही है । क्रम २ से अब ऐसी अवस्था हो गई है कि, यह अपने अनंत बलको समझकर होशियार हो गया है और मोहकी सेनासे युद्ध करनेके लिये तय्यार हो गया है । देशनालब्धिसे सीखे हुए विशुद्ध परिणामरूपी तीरोंको निर्भय होकर चलाने लगा है । मोह राजाकी नियत की हुई आठ प्रकारकी सेना संसारी आत्माके आठों ओर बल किये हुए है । इसने शुभ भावनाके मननरूप अनेक योद्धाओंको अपने मित्र ज्ञानी

विद्याधरको पूर्ण कृपासे प्राप्त कर लिया है । वे योद्धा उन कर्मोंकी सेनाके ऊपर अपने तीरोंको छोड़ २ कर विह्वल कर रहे हैं। इस घमसान युद्धमें आयु कर्मकी सेना जो बड़ी ही चतुर है इसके तीरोंसे बच जाती है, सदा ही इसके पीछे रहती हुई इसको उस स्थानसे निकलने नहीं देती है । शेष कर्मोंके योद्धाओंकी स्थिति कमजोर होती जाती है । जो कभी उनकी स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर थी वह स्थिति घटते २ अंत:कोड़ाकोड़ी सागर मात्र रह गई है । इन आठ प्रकारकी सेनामें ४ कर्मोंकी सेना बड़ी ही तीव्र है जिसको घातिया कहते हैं । इनका स्वभाव यद्यपि युद्धमें बाणोंकी चोटके पानेसे पहले पत्थर तथा हड्डीके समान कठोर था, परन्तु वह स्वभाव बाणोंकी लगातार चोटोंके पानेसे अब लकड़ी तथा बेलके समान नरम हो गया है । तथा अघातिया कर्मोंकी सेनामें जिन योद्धाओंका स्वभाव इतना अशुभरूप था कि उनके द्वारा पहुंचाई हुई चोटें विष और हालाहलके समान बुरा असर करती थीं उनका स्वभाव इस आत्माकी भावरूपी फौजोंकी चोटोंसे अब ढीला पड़कर नीम और कांजीके समान हलका होता चला जाता है तथा अघातिया कर्मोंमें जिन योद्धाओंकी सेनाओंका स्वभाव पहिलेहीसे कुछ शुभ था वे योद्धा इस साहसी आत्माके वीरत्वको देख अधिक शुभ होते जाते हैं, अर्थात् गुड़, खांडके समान जिनका स्वभाव था वह अब बदलकर अमृत और शर्करारूप होता जाता है । मोहराजा अपनी सेनाके योद्धाओंको समय २ खिरते देखकर चाहता है कि अधिक बलवान और स्थितिवाले कर्मोंको भेजूं, परन्तु वे इस वीरके पराक्रमसे घबड़ाकर कायर हो

रहे हैं। इसलिये लाचार हो वह वैसे ही कर्मके योद्धाओंको भेज-ता है, जिनकी स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर है। साहसी आत्माकी विशुद्ध भावरूपी सेनाके योद्धाओंके बलको बढ़ते देखकर जो नवीन मोहकी फौज है वह अंतर्मुहूर्त तक अंतःकोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिमें पल्यका संख्यातवां भाग घटती स्थितिको धरनेवाली ही समय २ में आती है। फिर दूसरे अंतर्मुहूर्त तक उस अंत स्थितिमें पल्यका संख्यातवां भाग घटती स्थितिवाले कर्मोंकी सेना समय २ आया करती है। इस तरह करते २ सात या आठसौ सागर स्थिति घटनेवाले कर्मोंकी सेना जब आ जाती है तब एक प्रकृतिबंधापसरण होता है। इस प्रकार ३४ प्रकृतिबंधापसरणोंके द्वारा घटती २ स्थितिवाले कर्मयोद्धा आते हैं और अधिक स्थितिवाले कर्मयोद्धाओंके आनेका साहस नहीं होता है। विशुद्ध भावधारी आत्माका ऐसा ही इस समय प्रभाव है। अब यह प्रायोग्य लब्धिका पूर्ण स्वामी हो गया है, इसने कर्म-शत्रुओंका बहुत बल क्षीण कर दिया है। धन्य हैं वे आत्मा जो इस प्रकार शास्त्राभ्यासके द्वारा वस्तु स्वरूपका पुनः २ मननकर तथा सम्यक् मार्गकी भावनाकर अपने परिणामोंसे अनादि कालसे लग्न कर्म शत्रुओंको पराजय करनेके लिये उद्यमवंत रहते हैं। अपना सुखा समूह अपने निकट है उसकी प्राप्तिमें जो रुचिवान होते हैं वे संसारातीत अविनाशी निजरूपकी समाधिमें तन्मय रहनेका हुल्लास करते हुए, निजघट कुरुक्षेत्रमें स्वसमरानंदका भोग भोगते नित्य आत्मपर विजयपताका फहराते हुए आनंदित रहते हैं और भवके संकटोंसे बचनेका पक्का उपाय कर लेते हैं।

(४)

शुद्ध निश्चय नयसे आनन्दकन्द शुद्ध बुद्ध परमस्वरूपी आत्मा व्यवहार नयसे मोहनृपकी प्रबल सेनाके अधिपति आठ कर्मोंके द्वारा घिरा हुआ अपने मित्र विद्याधरके द्वारा प्राप्त विशुद्ध मंद कषायरूपी सेनाओंके द्वारा उनका बल मंदकर उनको भगानेका पूरा २ साहस कररहा है। यह भव्य है, शिवरमणीके वरपनेको प्राप्त होनेवाला है। अब इसको प्रायोग्य लब्धिका स्वामित्व प्राप्त हो गया है। जिस पक्षकी विजय होती जाती है उस पक्षके योद्धाओंका उत्साह और साहस बढ़ता जाता है। इस वीरात्माके विशुद्ध परिणामोंमें इस तरह उत्साहरूपी तरंगोंकी वृद्धि है कि समय २ उनमें अनंतगुणी विशुद्धता होती जाती है, अपनी सेनाकी अधोकरण लब्धिमें होनेवाली चमत्कारिताको देखकर यह शूरवीर आत्मा एकाएक मोहनी कर्मकी बृहत् सेनाके बड़े दुष्ट और महा अन्यायी पांच सुभटपतियों (अफसरों) को ललकारता है और उनका सामना करनेको उद्यमीभूत होता है। यह पांच सुभट सम्पूर्ण जगतको भवके चक्रोंमें नचानेवाले हैं। इन्हीकी दुष्टतासे अनंतानंत जीव इस संसारमें अनादिकालसे पर्यायमें लुब्ध होकर आकुलित हो रहे हैं। इन दुष्टोंकी संगति जबतक नहीं छूटती तबतक कोई जीव इस जगतमें किसी कर्मशत्रुका न तो क्षय करसक्ता है न उनके बलको दबा सक्ता है। जीवोंको भव २ की आकुलतामयी उपाधियोंमें परेशान, अज्ञान और हैरान रखकर उसको एकतानके गान अमलान सुखथानमें स्ववितानका निशान स्थिर रखकर आत्मरस

जलस्थानमें स्नान तो क्या एक डुबकी मात्र ठहरानको न करने देनेवाले यह पांच आत्म बैरी हैं। पांचोंमें प्रधान मिथ्यात्व सेनापति है, और अन्य चार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, उस प्रधानके अनुगामी मित्र हैं। इन पांच अफसरोंके आधीन कर्मवर्गणा नामके अनगिन्ती योद्धा युद्धके सन्मुख हो रहे हैं। और अपने तीक्ष्ण उदयरूप वाणोंको लगातार उस वीर आत्माके विशुद्ध परिणामरूपी सुभटोंपर छोड़ रहे हैं परन्तु वे सुभट तत्त्वविचारकी अत्यंत कठिन ढालसे उन बाणोंकी चोटोंसे बिलकुल बच जाते हैं। और यह सुभट अपने बाणोंको इस चतुरतासे चलाते हैं कि उन पांचों सेनाके सिपाहियोंकी स्थिति कम होती जाती है, तथा उनका रस भी मंद पड़ता जाता है। केवल इन पांच सेनाओंहीका बल क्षीण नहीं हो रहा है, किन्तु सर्व विपक्षियोंकी सेनाकी कुटिलता और स्थिरता निर्बल होती जाती है।

एक मध्य अन्तर्मुहूर्ततक युद्ध करके इस वीरने अपना बहुतसा काम बना लिया है। अब इसके विशुद्ध भावोंकी सेनामें अपूर्व ही जोश, उत्साह और साहस है। सत्य है इस समय इसके योद्धाओंने अपूर्वकरणलब्धिका बल पाया है। अब ऐसी अपूर्वता इसके विशुद्ध परिणामोंमें है कि इसके नीचेके समयका कोई अन्य आत्मा किसी भी उपायसे इसके परिणामोंकी बराबरी नहीं कर सक्ता है, जब कि ऐसी बात इससे पहले अधोकरणमें सम्भव थी। अब समय १ अपूर्व २ अनंतगुणी विशुद्धताकी वृद्धिको धरनेवाले सुभट अपने बाणोंको, तलवारोंको

बरछियोंको इतनी तेजीसे चला रहे हैं कि पांचों सेनाके सिपाही घबड़ा गए हैं, करीब २ हिम्मत छूटती जाती है, समय २ अनंते झरते जाते हैं तथापि समय २ अपने सदृश अनंत कर्म वर्गणा- ओंको बुला लेते हैं। इसीसे अभी सन्मुखता त्यागते नहीं। धन्य है यह वीर आत्मा-परम धीरताके साथ युद्धकर रहा हैं और इस बातपर कमर कस ली है कि किसी तरह इन पाचोंको यदि क्षय न कर सका तो निर्बल कर भगा तो अवश्य देना। जबतक कोई पुरुष किसी इष्ट और साध्य कार्यके लिये अपने एक मन, वचन, कायसे उद्यत नहीं होता और संकटोंकी आगतिसे आकुलित नहीं होता तबतक कार्यका सिद्ध होना कठिन क्या असाध्य ही होता है। जिसको जैनागमके अद्भुत रहस्यसे परिचय हो गया है वह जीव जिनत्व प्राप्त करनेको तत्पर हो जाता है। जैसे द्रव्यका लोभी देश प्रदेश जाकर दुःख उठानेकी कोई चिन्ता न करके किसी भी रीतिसे द्रव्यको उपार्जन करता है व विद्याका लोभी दूर निकट क्षेत्रका विचार न कर विद्याका लाभ हो वहीं अनेक कष्ट उठाकर जाता है और विद्याका लाभ करता है। इसी तरह आत्मीक सुधाके स्वादका लोलुपी जहां व जिस उपायसे यह तृप्तिकर परम मिष्ट स्वाद मिले उसी जगह जा उसी उपायको कर जिस तिस प्रकार सुधासंवेदका उद्यम करता है ऐसे ही यह वीर आत्मा परमदयालु विद्याधरके प्रतापसे निज अनु- भूतितियाकी प्राप्तिका लोलुपी होकर अपने सारे उपयोग और शक्तिको इसी अर्थ लगा रहा है और इस अनुभूति-तियाके संवेदके विरोधी शत्रुओंसे भी जानसे युद्ध करता हुआ रंचमात्र

भी खेद न मान स्वसमरानंदके विशाल सुखमें कल्लोलें लेता हुआ अपने आशाके पुष्पोंकी मालाकी सुगंधी ले लेकर संतोषित हो रहा है।

(५)

परमदयालु विद्याधरकी प्रेरणासे जागृत हुआ वह वीर आत्मा मोह शत्रुसे युद्ध करनेके कार्य्यमें खूब दिल खोलकर तन्मय हो रहा है। अपूर्वकरणकी लब्धिके पीछे अब इसने अनिवृत्तिकरणकी लब्धि प्राप्त करली है। अब इसके फौजके सर्व सिपाही बदल गए हैं। एक विलक्षण जातिकी परम बलवान सेना इसके पास समयर आ रही है। वह सेना बड़ी बलिष्ट है। इस प्रकारकी सेना उन्हीं सुभटोंको प्राप्त होती है जो उन पांचों दुष्टोंको बिलकुल दबा ही देवेंगे। यह मोह शत्रु बड़ा क्रूर है। इसने अनंते जीवोंको कैदमें डाल रक्खा है। परम कृपालु विद्याधरकी कृपासे यदि कोई एक व दो आदि अनेक आत्माएं भी सुचेत हों, इससे युद्ध करने लग जांय और अनिवृत्तिकरण-लब्धिकी शक्तिका लाभ करें तो सर्व ही जीव एकसी ही बलवान परिणामरूपी सेनाको समय २ पाते हुए एक साथ ही इन पांचों दुष्ट सुभटोंको एक अंतर्महूर्तके भीतर ही दबा देते हैं। इस वीर आत्माके युद्धके प्रतापसे जो मोह शत्रुकी शत्रुता द्वारा १४३ (तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, सम्यक्त मोहनी, मिश्र मोहनी सिवाय) कर्म्म प्रकृति वीरोंकी सेना अनादिकालसे इस आत्माको घेरे हुए दुःखी किये हुये थी उनमेंसे बहुतसे वीरोंको इसने प्रायोग्यलब्धिके प्राप्त करनेपर ३४ बंधापसरणोंके द्वारा ऐसा

कमजोर कर दिया है कि वे अपनी नई सेना भेजनेसे रुक गए हैं, तथा इन पांचोंका तो बल इस समय इस धीरवीरने बहुत ही कमजोर कर दिया है, इसकी सेनाको तितर बितर कर दिया है सो इसकी सर्व कर्मवर्गणारूपी सेना कुछ आगे व कुछ पीछे चली आरही है, इसके सामनेसे हट रही है। उधर उस उत्साहीके उत्साहका पार नहीं है, अत्यन्त विशुद्ध सम्यक्त शक्तिके प्रादुर्भाव करनेको समर्थ परिणामरूपी योद्धाओंने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन पांचों सुभटोंको ऐसा परेशान कर दिया है कि, वे इस समय घबडा गये हैं और अपनी सेनाको तितर-बितर देखकर यही विचार करते हैं कि अब हमारा बल ठहरनेका नहीं, हमारी सेना बिखर गई है। उचित है कि हम एक अंतर्मुहूर्त ठहरकर अपनी सेनाको सम्हाल लेवें, फिर इसको कहां जाने देंगे, तुरंत इसके बलको नाशकर डालेंगे। थोड़ी देर इसको क्षणिक आनन्द मना लेने दो। अभी तो मेरे साथी बहुतसे वीर इसको दुखी कर रहे हैं। यह हमारे क्षेत्रसे बाहर तो जाने हीका नहीं है। ऐसा विचार यह पांचों दब जाते हैं अर्थात् उपशमरूप होकर एक अंतर्मुहूर्तके लिये अपने किसी प्रकारके बलको इस आत्मामें दिखलाते नहीं। इन पांचोंका दबना कि इस वीर आत्माको प्रथमोपशम सम्यक्तकी अपूर्व शक्तिका लाभ होना। अहा! हा!! अब तो उसके हर्षकी सीमा नहीं, इसने अनादि कालके बड़े भारी योद्धाओंको दबा दिया है। उसी समय विद्याधर आता है और कहता है "शाबास, शाबास! अब तेरा संसार निकट है, तू शीघ्र ही मोक्ष नगरका राजा होगा और वहांके अतीन्द्रिय सुखका

विलास भोगेगा। " अपनी स्वस्वरूपलब्धिके लाभकी आशाने इस आत्माके अंतरंगमें परम संतोष, परम शांत भाव भर दिया है। इस समय यह भी अपनी सेनाको विश्राम देता हुआ अपने अनंत शक्तिशाली स्वरूपका अनुभवकर जगतके आनन्दोंसे दूरवर्ती परम सुखको भोगता हुआ स्वसमरानन्दके अद्भुत विलासमें विश्वास कर परम सम्यक्त भावका लखाव कर रहा है।

(६)

परमानंदविलास, सुखनिवास, सद्गुणाभास, परमात्म प्रकाश-मईके अनुपम चिद्धासके लाभका उत्साही यह अनादि मिथ्यादृष्टी आत्मा अनिवृत्तिकरणलब्धिके प्रभावसे प्रथमोपशम सम्यक्तकी अपूर्व शक्तिको प्राप्तकर समय २ अद्भुत विशुद्धता पा रहा है। यद्यपि अनादिके पीछे पड़े हुए मोहके भेद विवक्षासे १४२ शत्रुओंमेंसे तथा अभेद विवक्षासे ११७ शत्रुओंमेंसे (क्योंकि स्पर्शादिक २० में ४, तथा ५ बंधन और ५ संघात, ५ शरीरोंमें गर्भित हैं इसलिये २६ कम हुई) अब केवल १०१ शत्रुओंकी सेना ही इसको आकुलता पहुंचा रही है। तथापि यह वीर इस समय इस आनन्दमें मस्त है कि मैं अब अधिकसे अधिक अर्द्धपुद्गल परावर्तनकालमें ही अवश्य शिवनगरमें जाकर निवास करूंगा और स्वसुधा—समूहका स्वाद अनंत कालतक भोगूंगा। इस समय मिथ्यात१, एकेन्द्रियजाति२, द्वेन्द्रियजाति३, तेन्द्रियजाति४, चौन्द्रियजाति५, स्थावर६, आताप७, सूक्ष्म८, अपर्याप्त९, साधारण१०, अनन्तानुबन्धी क्रोध११, अनन्तानुबन्धीमान१२, अनन्तानुबंधिमाया १३, अनन्तानुबंधिलोभ१४, इस प्रकार ११७ मेंसे १४ शत्रु दबे

बैठे हैं तथा नई सेना भी आना बन्द हो गई है। इन १४ की तो नई सेना आती ही नहीं; इसके सिवाय हुंडक संस्थान१, नपुंसकवेद२, नरकगति३, नरकगत्यानुपूर्वी४, नरकायु५, असंप्राप्तस्फाटिकसंहनन६, स्त्यानगृद्धि७, निद्रानिद्रा८, प्रचला प्रचला९, दुर्भग१०, दुस्वर११, अनादेय१२, न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान१३, स्वातिसं०१४, कुब्जकसं०१५, वामनसं०१६, वज्रनाराचसंहनन१७, नाराचसं०१८, अर्द्धनाराचसं०१९, कीलितसं०२०, अप्रशस्तविहायोगति२१, स्त्रीवेद२२, नीचगोत्र२३, तिर्यंगति२४, तिर्यंगत्यानुपूर्वी२५, तिर्यंचायु२६, उद्योत२७—ऐसे २७ शत्रुओंकी सेनाका आना और भी बन्द हो गया है। इस उपशम सम्यक्तकी अवस्थामें मनुष्यायु और देवायुकी सेना भी नवीन आनेसे रुक गई है। केवल ७४ प्रकृति ही अपनी नई सेना भेजती है। तथापि इस आनंदमईको इस समय किसीकी परवाह नहीं है। यद्यपि कुछ शत्रु दबे बैठे हैं, कुछ पुराने ही अपना जोर कर रहे हैं; तथापि इसकी रणभूमिमेंसे १४२ प्रकृति मई शत्रुओंमेंसे किसीकी सत्ताका नाश नहीं हुआ है। ऐसा होने पर भी इस समय इसके साहसका पार नहीं है। इसके उत्साहकी थाह नहीं है। यह अपने बलको समय २ सावधान किये हुवे अनुपम रुचिके स्वादमें तृप्त हो रहा है। उधर वे शत्रु इसको अंतर्मुहूर्तके लिये मगन देखकर इसकी ओर इसके दबानेके लिये नाना विकल्प कर रहे हैं और दांत पीस रहे हैं। तथापि इस निधिके स्वामीको कुछ परवाह नहीं है। यह अपनी स्वरूप-

शक्तिके आल्हादमें हर्षित होता हुआ **स्वसमरान्दका** आनन्द मना रहा है।

(७)

निज आत्मस्वरूपकी प्रकटताका अभिलाषी सिद्ध समान निज रूपका विश्वासी, वास्तवमें निज शुद्ध ग्रामका वासी आत्मा १ अंतर्मुहूर्त तक अपूर्व ही आनन्दको भोग रहा है। इस समय इसके आनन्दकी जाति भिन्न ही प्रकारकी है। इन्द्रियाधीन सुखकी सीमापर पहुंचे हुए बड़े २ धुरंधर ऐश्वर्यधारी इस सम्यक्त विलासके सुखसे आनंदित आत्माके समयमात्र सुखकी भी बराबरी नहीं कर सकते। असलमें देखो तो यह आत्मा इस कालमें भी मोक्ष सुखका ही अनुभव कर रहा है। मानों मुझे मोक्ष प्राप्त ही हो गई अथवा मैंने शिवतियाका लाभ ही कर लिया, ऐसा हर्ष इस वीर साहसी आत्माको हो रहा है। परन्तु खेद है यह इसका आनन्द थोड़ी ही देरके लिये है। यह तो इधर स्वस्वभावके कल्लोलमें केल कर रहा है उधर मिथ्यात्व प्रकृतिने अपनी विक्रियासे इस आत्माको दवानेके लिये अपनी सेनाके ३ रूप कर लिये १ ला सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व रूप २ रा सम्यक् मिथ्यात्वरूप और ३ रा मिथ्यात्वरूप। यह सेना एक दूसरेसे विकटरूपमें सजती गई। इतनेमें १ रा अनन्तानुबन्धी कषाय जो दवा बैठा है, यकायक उठता है और इसको निज सत्ता भूमिमें निद्रित देखकर अपना ऐसा प्रबल हमला करता है कि इस उपशम सम्यक्तीका उपयोग जागता है और ज्यों ही अपनी आंख खोलकर उसकी ओर निहारता है कि दवा लिया जाता है। और आनकी आनमें सम्यक्तसे गिरकर सासा-

दनकी भूमिकामें आ जाता है। अब यहां इसकी सत्तामें १४१* कर्म प्रकृति सेनाओंके साथ दो कर्म प्रकृति की सेना और मिल जाती है और १४३ कर्म प्रकृति सत्तामें हो जाती है। इससे एक समय पहले तो १०३ शत्रुओंकी सेना ही सामना कर रही थी, परन्तु अब ९ प्रकृतियोंकी सेना जो खाली बैठी थी वह भी उठ खड़ी हुई और इस आत्माको दुःखी करने लगी। इन ९ में ४ तो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और ५ में स्थावर एकेन्द्रिय जाति और विकलत्रय ऐसे ९ प्रकृतियोंकी सेना आजाती है। और नरकगत्यानुपूर्वी इस गुणस्थानमें दब जाती है, इससे १११ प्रकृतियोंकी सेना अपना जोर दिखलाती है। तथा नई सेनाका आगमन जो इसके पहिले केवल ७४ ही ही का था अब बढ़ता है और ११७ में से १०१ प्रकृतियोंकी सेनाका आना होने लगता है। जो २७ शत्रुओंकी सेना पहिले गिनाई थी उसमेंसे हुंडक संस्थान, और नपुंसक वेद निकालकर तथा मनुष्यायु और देवायु जोड़कर शेष सर्व २७ प्रकृतियोंकी सेनाका आगमन पहलेकी अपेक्षा इस गुणस्थानमें बढ़ गया है। इस सासादन अवस्थामें आत्मा एक गहरतामें आ जाता है, सम्यक्भावसे छूट जाता है। तीव्र कषायके आवेशमें उत्कृष्ट ६

---

* फुट नोट—इस लेखके गत प्रबन्धोंमें अनादि मिथ्यादृष्टीके १४३ का बंध लिखा था सो १४१ का ही बंध समझना चाहिये। तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक बंधन, आहारक संघात, आहारक आंगोपांग, सम्यक मिथ्यात्व, सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व-- इन ७ का बंध नहीं होता।

आवली प्रमाण और जघन्य १ समय प्रमाण बाकी रहकर तुरत
मिथ्यात्वकी भूमिकामें आजाता है। हा! जो आनन्द इस निरा-
कुल आत्माको थोड़ी ही देर पहले था वह सब अस्त हो जाता
है और यह महा दुखी होकर विषयोंकी चाहकी दाहमें जलने
लगता है और उनकी ही प्राप्तिके सोचमें तड़फड़ाने लगता है।
यदि कोई विषय मिल जाता है तब अन्य विषयोंकी तृष्णामें
विह्वल रहता है।

धन्य हैं वे प्राणी जिन्होंने मिथ्यात्वकी सेनाओंको सत्तासे
ही नष्टभ्रष्ट करके भगा दिया है और जो क्षायिक सम्यक्तकी
दृष्टिसे निर्भय हो **स्वसमरानन्द**का अनुभवकर तृप्त रहते हुए
अचिन्त्य रहते हैं।

(८)

आनंदकंद, अविनाशी, परम निरञ्जनतत्व मनन अभ्यासी
आत्मा इस समय मिथ्यात्व भूमिकामें घिरा हुआ हुआ मोहराजा-
के प्रबल भटोंकी सेना द्वारा चारों ओरसे दुखी और व्याकुल हो
रहा है। अभेद विवक्षासे उदय योग्य १२२ प्रकृतियों (स्पर्शादि-
मेंसे ४ लेकर १६ बाद दे तथा ५ बंधन, ५ संघातको शरीरोंमें
ही गर्भित कर १० बाद दे, १४८मेंसे २६ जानेसे १२२ प्रकृति
उदय योग्य होती हैं।) की सेनामें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व,
आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग और तीर्थंकर प्रकृति की सेना
अपना बल नहीं दिखला रही है। बड़ी कठिनतासे किसी काल
लब्धिके वश परोपकारी सद्गुरुद्वारा इस आत्माने जिस अनादि
मिथ्यात्वसे अपना पग छुड़ा लिया था, खेद है इसीने फिर इसको दबा

दिया। अब यह फिर पहिलेके समान बावला हो रहा है। जितने शत्रुओंकी सेना इसको निराकुल सुखानुभवसे रोक रही है उतने ही शत्रुओंकी सेनाएं बराबर आती रहतीहैं और इसको बांधती रहती हैं। इस आत्माकी सत्ता भूमिमें अब सर्व १४९ शत्रुओंकी सेना ही खड़ी है, क्योंकि अभी तक यह न तो छठे गुणस्थानमें चढ़ सका है और न इसे केवली श्रुतकेवलीकी निकटता हुई है और न १६ कारण भावनाका ऐसा मनन ही किया है जो इसे तीर्थंकर प्रकृतिकी सेना बंधनमें डाले। बहुत कालतक इस दीन आत्माको कर्म शत्रुओंसे अपनी निर्बल दशामें लड़ते हुए और हारते हुवे देखकर परम दयालु सत्यमित्र विद्याधर आते हैं और उसे ललकार कर कहते हैं, " हे आत्मन् किधर गाफिल हो रहा है!! देखो, कितने परिश्रमसे तूने मिथ्यात्व और ४ कषायोंको दबाया था!!! परंतु तेरे प्रमादसे वे अब ५ से ७ होगए हैं अब तुझे साहस करनेकी आवश्यक्ता है। मैं तत्त्वज्ञानरूपी मेरे निकटवर्ती मुसाहबको तेरे पास छोड़ता हूं। तू इसकी सहायता ले इसकी सम्मतिसे युद्धकर अवश्य विजयी होगा! " सच है, जो सच्चे मित्र होते हैं वे दुःखीकी आपत्तियोंको मेटनेके लिये अपनी शक्तिभर परिश्रम उठा नहीं रखते। तत्वज्ञानसे पुनः पुनः हरएक क्रियामें विचारके साथ वर्तनेवाला धीर आत्मा फिर निज पुरुषार्थ सम्हाल बड़ी ही वीरतासे कर्म-शत्रूओंसे युद्ध करता है; देखते २ प्रायोग्यलब्धिको पा कर्मोंकी दशाको निर्बल कर देता है और शीघ्र ही तीनों कारणोंके द्वारा सातों प्रकृतियोंको फिर दबाकर याने उपशमकर **प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी** हो

जाता है और यहां आकर स्वरूपाचरण चारित्रमें रमन करता है। धन्य है परिणामरूपी संसारकी विचित्रता, जिसने इस आत्माको आनकी आनमें विषय सुखकी श्रद्धासे हटाकर अतीन्द्रिय आत्मीक अनुभवकी दशाकी श्रद्धामें लाकर खड़ा कर दिया है। अब यह परम सुखी अपने परिश्रमको सफल लख स्वसमरानन्दका स्वाद ले अमृतानन्दी हो रहा है!!

(९)

अपनी अनुभूति सत्ता भूमिमें सम्यग्दृष्टी आत्मा यद्यपि बहुतसे कर्म वर्गणाओंकी सेनासे घिरा हुआ है और इसपर बाणोंकी वर्षा हो रही है, तथापि चार अनंतानुबंधी कषाय और तीनों मिथ्यात्वके दब जानेसे मोहकी सर्व सेनाका बल घट गया है और यह शिवसुखका अभिलाषी मोक्षनगरीके राज्य करनेका हुल्लासी अपने शुभाशुभ कर्मोंके उदयमई आक्रमणोंसे कुछ हर्ष विषाद नहीं करता है। सत्य विद्याधरके आज्ञारूप वचनोंमें श्रद्धा धार यह भव्य जीव इस श्रद्धामें तन्मय हो रहा है कि मैं शीघ्र ही कर्मशत्रुओंका विजयी होऊंगा। यह साहसी अब अपने आत्माके मनोहर उपवनमें जाकर सैर करता है और उसमें प्रफुल्लित होनेवाले स्वगुण वृक्षोंकी शोभा देख परम सुखी होता है। जो सुख नौ ग्रीवकवाले मिथ्यादृष्टी अहमिन्द्रोंको नहीं प्राप्त है, जो सुख सम्यक्त रहित चक्रवर्तीके भागमें नहीं आता है, उस सुखको भोगनेवाला यह धीर वीर हो रहा है। सत्य है जो कोई निज उपयोग परिणतिको सर्व ज्ञेय पदार्थोंसे संकोच परमात्माके शुद्ध अनुभवमें जोड़ता है, और थोड़ी देरके लिये थम

जाता है उस समय इसको स्वस्वरूपकी अद्भुत बहार नगर आती है। ऐसी दशामें यह आत्मा भी सज्जित हो गया है। अब इसको कर्मशत्रुओंके आने, रहने तथा आक्रमणोंकी कुछ भी परवाह नहीं है। यद्यपि इसने स्वस्वरूपकी चिन्ता रक्खी है, परन्तु जिन सात शत्रुओंके बिना सारी मोहकी फौज बलहीन मालूम होती है वे ही शत्रु फिर इसको दबानेका उद्यम करते हैं।

यह बिचारा अंतर्मुहूर्त ही ठहरा था कि यकायक सम्यग्मिथ्यात्व नाम दर्शन मोहनीकी दूसरी प्रकृतिके योद्धाओंने इसको दबा दिया, और यह बिचारा चौथे गुणस्थानसे गिरकर तीसरेमें आ गया है। यहां इसकी बहुत ही बुरी दुर्गति है। मिथ्यात्व सम्यक्त दोनोंका मिश्र भाव दही गुड़के स्वादके समान इसके अनुभवमें आ रहा है। मिश्र प्रकृतिके बाणोंके पड़नेसे इसकी चेष्टा विह्वल हो रही है। धन्य हैं वे पुरुष जो इस प्रकृतिका विध्वंस कर क्षायक सम्यक्ती होते हैं। और फिर कभी भी इस शत्रुसे दबाये नहीं जाते हैं। स्वस्वरूपके अनुभवके स्वादी है, वे ही **स्वसमरानन्दका** आल्हाद ले परम तृप्ति पाते हैं।

(१०)

निश्चय नयसे शुद्ध चैतन्यता विलासी परमतत्त्व अभ्यासी ज्ञानगुणविकासी आत्मा व्यवहार नयसे कर्मबंधनमें पड़ा हुआ मोह शत्रुके द्वारा अनेक प्रकारसे त्रासित किया जा रहा है। कर्म शत्रुओंसे युद्ध करना एक बड़ा ही कठिन कार्य है। जो इस युद्धमें घबड़ाते नहीं किंतु तत्वविचारकी सहायताके भरोसेपर साहसी रहते हैं, वे ही अनादि कालसे संसारी आत्माको दुःखित

करनेवाले कर्मोंको दूर भगाते हैं। मिश्रगुणस्थानकी भूमिकामें यह आत्मा आगया है। मिश्र मोहनीका बल प्रबल हो गया है। इस समय (११७-१६-२५-२ आयु) ७४ कर्म प्रकृतियोंकी सेना समय २ आकर बढ़ती जाती है। दूसरेमें १०१ आती थीं। अब २५ तो दूसरे ही तक रहीं तथा आयुकर्मका बंध इस मिश्र-गुणस्थानमें होता नहीं, इससे दो आयु प्रकृति घटी। परन्तु १०० कर्म शत्रुओंकी सेना इस गुणस्थानमें इस आत्माको अपने असरसे बाधित कर रही है। दूसरे गुणस्थानमें जब १११ प्रकृतियोंकी सेना दुखी कर रही थी, तब यहां अनंतानुबंधी ४ और एकेंद्रिय, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, तथा स्थावर ऐसे ९ कर्मोंकी सेनाएं दब गई हैं, तथा मरणके अभावसे नर्क सिवाय तीन शेष आनुपूर्वी घटानेपर और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति मिलानेपर १०० प्रकृति अपना जोर कर रही हैं। रणभूमिकी सत्तामें देखो तो जो सातवेंमें नहीं चढ़ा है, उसके आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग तथा तीर्थंकर इन तीनको छोड़ १४५ कर्मप्रकृतिकी सेना अपना बल कर रही हैं। वास्तवमें इस समय भी यह आत्मा बड़ी ही गफलतमें है। इसके मिश्र परिणामोंकी पहचान अत्यंत सूक्ष्म है। एक अंतर्मुहूर्त ही नहीं बीता था कि यह आत्मा फिर मिथ्यात्वके तीव्रोदयसे प्रथम गुणस्थानकी भूमिमें आजाता है और पहलेकी तरह महामोहके बंधनमें बंध जाता है। वास्तवमें परिणामोंकी लड़ाई बड़ी ही कठिन है। पलक मारनेके भीतर ही इनकी उलटपुलट अवस्था हो जाती है। जो वीर भेदविज्ञानके भयानक शस्त्रको हाथमें रखते हैं वे ही इन शत्रुओंके हमलोंसे अपनेको

बचाकर अपने आत्मीक धनकी लोलुपतामें मगन रह स्वात्मपर्वतसे झरनेवाले स्वानुभव सुधारसका पान करते हुए और परको निजसे हटाते हुए स्वसमरानन्दका अद्भुत आनन्द ले परमसुखी रहते हैं।

(११)

हा! आजकी आनमें क्यासे क्या हो गया! साहसी आत्माकी सेनामें अंधेरा छा गया! दर्शन मोहके भयंकर आक्रमणसे चैतन्य देवकी सर्व सेना विह्वल होगई! मोहनी धूलकी ऐसी वर्षा हुई कि विशुद्ध परिणामरूपी योद्धाओंकी आखोंमें अंधेरा फैल गया। कषायरूपी प्रबल वैरियोंने आत्मीक धनकी सुधि भुलवा दी। जो आत्मा सम्यक्त मित्रकी सहायतासे निजधनको दृढ़तासे पकड़े हुआ था और उसीके विलासमें रमना अपना सुख समझता था, वही आत्मा उस मित्रके छूटने और मिथ्याद्रोहीके वशमें आजानेसे इन्द्रियोंके विषयोंको ही उपादेय मानने लगा है, विषयोंके लिये अन्यायसे धनोपार्जन करने लगा है, रात्रिदिन भवकी बाधाओंमें पड़कर दुखी होने लगा है, तथापि उनको त्यागता नहीं। परस्वरूपमें आप पनेकी बुद्धिने सारा ही खेल उलटा बना दिया है। बड़ा ही आश्चर्य है। निजरंग भूमिमें निजरूप धर कर नृत्य करनेवाला आत्मा आज परंरग शालामें अपना पर रूप बनाए पर हीकी चेष्टामें उन्मत्त होरहा है; अपनी पिछली अनादिकालकी निकृष्ट अवस्थामें रहने लग गया है। जिस **तत्त्वज्ञान** और **तत्त्वविचार** सेनापतियोंकी सहायतासे इसने मोहपर विजय पाई थी उनको भी अपनी सेवासे उन्मुखकर दिया है। यह दशा

देख परम दयालु श्री गुरु विद्याधर फिर आते हैं और जब इसके पासमें आक्रमण किये हुए मोहके योद्धओंको कुछ गाफिल और बेखबर पाते हैं तब इस आत्माको फिर सचेत करते हैं । श्री गुरुका इतना ही शब्द कि, हे त्रिलोक धनी ! क्यों रे परधनमें राग करता है । देख तेरा अटूट भंडार तेरे ही निकट है । जरा अपनी नजर जगतसे फेर, निजघरमें देख, तुझे तेरी निधिका अवश्य निश्चय हो जायगा। इस आत्माको जगाता है और जैसे ही यह सचेत होता है तत्त्वज्ञान और तत्त्वविचार योद्धाओंकी सेनाएं विद्याधरकी प्रेरी हुई इसकी सहायता करने लग जाती हैं । यह वीर इन सेनाओंकी सहायतासे मोह वैरीकी सातकर्मरूपी सेनाओंके जोरको और स्थितिको कमजोर कर देता है । अंतः-कोड़ाकोड़ी सागर मात्र ही स्थितिकर देता है । और अपने बलको बढाते हुए प्रायोग्य और करणलब्धिके उज्वल परिणामोंके द्वारा दर्शनमोहनीके तीन और चारित्रमोहनीके ४ अनंतानुबंधी कषाय ऐसे सातों योद्धाओंकी सेनाको ऐसा दबाता है कि वह बिलकुल सामनेसे हट जाते हैं। उनका हटना कि यह आत्मा फिर सम्यक्त मित्रकी रक्षामें चला जाता है, उपशम सम्यक्तके विशुद्ध परिणा-मोंका कर्ता भोक्ता हो जाता है और इस दशामें मैं क्रोधादि कषायोंका कर्ता हूं और क्रोधादि कषाय मेरे कर्म हैं, इस बुद्धिको हटा देता है-जो जगत इसका कर्म और इसको रागी द्वेषी कर रहा था वही जगत अब इसका तमाशा हो गया है-यह वास्तवमें ज्ञाता दृष्टा है-सो अब ज्ञाता दृष्टा पनेका कार्य्य ही कर रहा है । धन्य है यह आत्मा, इस समय इसका कार्य्य और सिद्धम-

हाराजका कार्य एक हो रहा है। अन्तर केवल सराग और वीतरागका है! धन्य हैं वे वीतरागी सिद्ध भगवान जिनका ध्यान सरागी जीव करते वीतरागी हो जाते हैं और अपनी साधक और साध्य दोनों अवस्थामें स्वसमरानंदके कारण और कार्यसे द्रवीभूत होता हुआ जो परमामृत रस उसका स्वाद लेते हुए परमतृप्त रहते हैं।

(१२)

उपशम सम्यक्तकी मनोहर भूमिकामें केल करनेवाला आत्मा जब शिवरमणीके प्यारकी चिन्ताओंको कर रहा था और उसकी मुहब्बतसे पैदा होनेवाले आनन्दके लाभको ले रहा था, तब उधर मोहराजाके प्रबल सात भट जो आत्मवीरकी सेनासे थकके बैठ गए थे, बारबार मोहराजा द्वारा प्रेरित किये जानेपर भी नहीं उठे। अंतमुहूर्त तक मोहने इसका उद्यम किया परतु बिलकुल दाल न गली। आत्मवीरके विशुद्ध परिणामरूपी योद्धाओंने इस कदर उन सातोंको परेशान किया था कि उनमेंसे छः तो बिलकुल निद्रित ही हो गए। सातवां सेनापति जिसका नाम **सम्यक्तमोहनी प्रकृति** था, जागता रहा। मोहकी डपटमें आकर वह उठा और ऐसी गफलतमें उस वीरपर आक्रमण किया कि वह आत्मवीर उसको हटा नहीं सका। इसका प्रतिफल यह हुआ कि वह आत्मवीर उपशम सम्यक्तकी भूमिकासे च्युत होकर **क्षयोपशम** सम्यक्तकी जमीनमें आगया। इसने आते ही आत्मवीरकी सेनाके विशुद्ध परिणामरूपी योद्धाओंके अन्दर मलीनता छा दी उनको सकम्प और चलायमान कर दिया। उपशम सम्यक्तकी हालतमें सर्व

योद्धा नीचे मैल बैठे हुए निर्मल जलके समान उज्जवल थे, अब ऐसे होगए जैसे नीचेका मैल ऊपर साफ पानीमें मिल जानेसे पानीकी हालत मैली हो जाती है। उपशमसम्यक्तमें किसी आयु-कर्मका बंध नहीं होता था, अब यहां मोहकी प्रेरणासे आयुकर्म-सेनापतिने अपनी सेना युद्धभूमिमें भेजना भी ठान लिया। सच है, निर्बल दशाको देखते ही शत्रुओंका दबाव होता है। इस भूमिकामें आनकर आत्मवीर इतना तो सचेत ही रहा कि इसने किसी भी तरह उन छः बड़े मोहके सैनिकोंको उठने नहीं दिया। यद्यपि सम्यक्त मोहनीने आकर किसी कदर अपना नशा आत्म-वीरकी सेनामें फैलाया तथापि इसकी सेना चौथे गुणस्थानसे नहीं हटी। मैं निश्चयसे शुद्धबुद्ध स्वभाव, ज्ञाता, दृष्टा, अविनाशी हूं। कर्मसम्बन्ध अनादि होनेपर भी त्यागने योग्य हैं। निज अनुभूति यद्यपि नवीन है, परन्तु ग्रहण करने योग्य है, इस विचारको इस वीरने नहीं त्यागा। तथा सम्यक्त मोहनीके बलने कभी २ सप्त भयोंमें फसाया, कभी २ संसारीक भोगोंकी तृष्णाको बढ़वाया, कभी २ पर पदार्थोंमें उदासीनताके बदले घृणाको उत्पन्न कराया, कभी २ आत्मज्ञान रहित पुरुषोंका धर्मपद्धतिसे आदर सत्कार करवाया, तौ भी चौथे गुणस्थानसे कभी इसको धर्मपद्धतिसे गिरा नहीं सका और न इस आत्मवीरके पुरुषार्थको कम कर सका। यह वीर अपनी भूमिकामें खड़ा हुआ, आगे चलनेकी कोशिशकर रहा है और इस उपायमें है कि अप्रत्याख्यानावरणी कषायोंकी सेनाको दबाके पांचवें गुणस्थानमें चढ़ जाऊं। धन्य है यह वीर! श्रीगुरु विद्याधरके प्रतापसे यह आज स्वसुखकी भावनामें लीन

इन्द्रियजनित बाधासहित पराधीन क्षणिक सुखोंको सन्मानकी दृष्टिसे नहीं देखता है और अपने ज्ञानानंद रससे प्रपूरित शांति-धाराके निर्मल प्रवाहमें केल करता हुआ जगतके प्रपंचोंसे रहित **स्वसमरानंद**में तन्मयता करता हुआ उन्मत्त रहता है।

(११)

आत्म वीर निज शिवप्रियाका अभिलाषी, मोहशत्रुसे उदासी, निजगुण विकासी होकर हर तरहसे रिपुदलको संहार व उसके उपशममें प्रयत्नशील होरहा है, इस समय इसकी दृष्टि चार अप्रत्याख्यानावर्णी कषायोंकी तरफ दृढ़तासे लग रही है क्योंकि उनके रोकनेके कारण यह आत्मा पंचमगुणस्थानमें नहीं जासका। जिस संयमकी सहायतासे मोक्षका विशाल आराम स्थान प्राप्त होता है उस संयम मित्रका कुछ भी समागम नहीं होने पाता। धन्य है संयम मित्र जो इसका निरादर करते हैं और इसके विरोधी असंयमकी कदर करते हैं, अनेक कष्ट सहनेपर भी स्वामृत सुखका अनुभव नहीं कर सक्ते। आत्मवीरको अपने तत्त्वज्ञान मित्रकी ऐसी प्रबल सहायता है कि जिसके कारण इस वीरके विशुद्ध परिणामोंकी सेनामें प्रौढ़ता बढ़ती चली जाती है उनकी साहसभरी बार २ की चोटोंसे चारों अप्रत्याख्यानावर्णी कषायोंका मुख कुम्हला गया है और वे एक दूसरेकी मुंहकी ओर ताकते हैं कि कोई तो अपना प्रबल बल करे। अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोधके निमित्तसे इस आत्मवीरके परिणामोंमें त्यागभावकी ओरसे अरतिपना हो रहा है, अप्र० मानके उदयसे यह आत्मा निज वर्तमान प्रवृत्तिमें जो अहंकार है उसको त्यागता नहीं, अप्र० मायाके

उदयसे यह आत्मा चित्तको ऐसा साहसी नहीं करता जो संयम धारे अपनी शक्तिको प्रगट करनेमें हिचकता है, अप्र० लोभके उदयसे यह आत्मा विषयोंके अनुरागको इतना कम नहीं करसक्ता कि जिससे पंचमगुणस्थानमें जासके। इस प्रकार अपनी शक्तिकी व्यक्ततामें रोके जानेके कारण इस वीरको अत्र क्रोध आगया है और इसको तत्त्वज्ञानने ऐसी दृढ़ विशुद्ध परिणामकी फौज दी है कि जिस सेनाके बलसे इसने ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाए कि वे चारों योद्धा युद्धस्थलमें खड़े न रह सके और भागकर मोहकी सेनाके पड़ावमें दुबक रहे। इन चारोंका साम्हनेसे हटना कि आत्म वीरको देशसंयमसे भेट होना और पंचमगुणस्थानकी भूमिकामें पहुंच जाना, इस भूमिकामें आते ही इस वीरकी एक मंजिल फतह होती है और यह. इस जगह ग्यारह प्रतिमाओंकी दृढ़ सेनाओंको धीरे २ अपने हाथमें करता हुआ कर्म शत्रुओंसे भिड़ रहा है, इस भिड़ावमें जो आनन्द इसको होरहा है, वह वचन अगोचर है। जो जीव आलस्य त्याग निजानुभवके रसिक होते हैं वे ऐसे ही **स्वसमरानंद**की प्रवृत्ति कर भव आकुलताको विनाश स्वसुखका प्रकाश करते हैं।

(१४)

निज शक्तिके प्रकाशमें परमादरसे उद्योग करनेवाला आत्मा अपनी शुद्धिकी वृद्धिमें स्वयंबुद्ध होता हुआ तथा मुक्त-तियाके अर्थ किये हुए घोर समरमें अपनी वीरतासे अपनी विजयके आनंदको लेता हुआ पंचम गुणस्थानमें पहुंच अपने मित्र विद्याधर द्वारा भेजे हुए बारह व्रतरूप बारह दृढ़ योद्धाओंकी सहायतासे

मोहकी सेनाको धीरे २ निर्बल कर रहा है। अहिंसा अणुव्रतसे त्रसहिंसा करानेवाले कषायरूपी भावको, सत्य अणुव्रतसे असत्य बुलानेवाले कषायरूपी भावको, अचौर्य्य अणुव्रतसे चोरी करानेवाले लोभादि कषायरूपी भावको, ब्रह्मचर्य्य अणुव्रतसे स्वस्त्री सिवाय अन्य स्त्रियोंमें रमन करानेवाले कषायरूपी भावको, परिग्रह प्रमाणसे तृष्णा बढ़ानेवाले भावको रोकता है! दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थ दंडव्रत तथा सामयिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसंविभागव्रत यह सातों व्रत उन ऊपर कहे पांच अणुव्रतरूपी वीरोंको सहायता देते हैं और कषायोंसे युद्ध करनेमें मदद प्रदान करते हैं। इस भूमिकामें ठहरनेसे इस आत्म वीरका सामना करनेको जो चौथी भूमिकामें ७७ प्रकृति आती रहती थीं, उनमेंसे दस प्रकृतियोंकी सेनाने आना बन्द कर दिया, याने अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध, मान, माया लोभ; मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन् तथा इसके साथ युद्ध करनेको पहले १०४ प्रकृतियोंकी सेना थी; अब १७ प्रकृतियोंकी सेनाने युद्ध करनेसे हाथ रोक लिया अर्थात् अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक आंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ॥

यद्यपि यह युद्ध करनेवाली सेना (कम) इतनी होगई है, तथापि इस समय मोहके युद्धस्थलकी भूमिमें नरकायुके सिवाय सर्व १४७ प्रकृतियोंकी सेना मौजूद है।

आत्मवीरके पास एक बड़ी जीतकी बात यह है कि जब इसके विपक्षी अशुभ कषाय भावोंके वीर कम होते जाते हैं। तब इसके पास एक वैराग्यरससे भरे हुए मदोन्मत्त शुभ भावरूपी वीर बढ़ते जाते हैं। ग्यारह प्रतिमामई उत्तरोत्तर एक एकसे सुंदर और मनोज्ञ सेनाके बलने इस आत्मवीरको बड़ा बलवान बना दिया है और यह धीरे २ मोहके चित्तको लुभानेवाले पर द्रव्यों-को और पर भावोंको छोड़ता जाता है। यहां तक ब्रह्मचारी हो स्त्री त्यागता, फिर आरम्भ त्यागता, फिर धनादिक व उनकी अनुमति भी त्यागकर क्षुल्लक और ऐलक हो जाता है। इस अनुपमदशामें रहकर यह आत्मवीर मोहके बलको बहुत वीरता और तेजीके साथ घटाता जाता है और अपनी शक्तिको बढ़ाता जाता है। ज्यों, ज्यों, स्वाधीनता, निर्भयता, निराकुलताकी वृद्धि होती है त्यों त्यों स्वानुभवरसकी धाराका स्वाद बढ़ता जाता है और यह धीरवीर आपमें अपने शुद्ध स्वरूपका आनन्द लेता हुआ स्वसमरानंदके हितकारी खेदसे कञ्चित भी खेदित होता नहीं।

(१५)

आत्मवीर स्वविरोधी संसारसे विमुख होता हुआ अपने निजानन्दके विलासको प्रदान करनेवाली शिव-तियाकी गाढ़ प्रीतिके कारण मोहकी सेनाको नाश करनेके लिये दृढ़ प्रयत्नशील हो रहा है। पांचवें गुणस्थानके उत्कृष्ट ऐलक पदमें सुशोभित होता हुआ तथा उत्कृष्ट श्रावककी मर्यादाको अखंड पालता हुआ अत्यंत उदासीन रह अपनी वैराग्यमई छटाको ऐसा प्रकाशित कर रहा है कि जिससे दर्शन करके जीवोंका मोह भवके गाढ़ बंधनोंसे

मुक्त हो जाता है। मोहके प्रबल योद्धारूपी कषायोंके द्वारा त्रासित किये जानेपर भी यह अचल रहता है और प्रत्याख्याना-वरणी चारों कषायोंको भी विध्वंस करनेका उपाय करता है। भव-विकारोंसे रहित, निज सत्तावलम्बी, अनुभव-रसके पानेसे बलिष्ठ भावको धारण करने वाला धर्मध्यानकी महान् खड्ग अत्यंत शांतता और धीरताके साथ चलाता है, और बालू-रेत समान कषायोंके चारों योद्धाओंको ऐसा डराता तथा घबड़ा देता है कि वे एकाएक दबके बैठ जाते हैं। उनका उपशम होना कि इस वीरकी शुभ भावकी सेनामें साहस और आनन्दकी ऐसी वृद्धि होती है कि यह वीर झटसे लंगोटकी भी त्याग देता है। लंगोटके त्यागते ही सातवें गुणस्थानमें उल्लंघ जाता है और तब मुनिके रूपमें सर्व परिग्रह-रहित हो आत्म-ध्यानके विचारोंको इतनी मजबूतीसे अपने आपमें और अपनी आज्ञामें कायम रखता है कि छठे गुणस्थानी मुनीकी ऐसी प्रमाद रहित और सावचेतीकी अवस्था नहीं होती। परन्तु इस अवस्थामें इस आत्मवीरको जो परमाह्लादकी छटा और उन्मत्तता आती है, उसके रसमें वह इस कदर बलके साथ निमग्न हो जाता है कि इसका कदम सात-वेंमें एक अंतर्मुहूर्त ही ठहरने पाता है। प्रमादके आते ही यह छठी भूमिकामें गिर जाता है। तौ भी यह साहसहीन नहीं होता। अपनी कमरको दृढ़ बांध कर्मोंसे लड़ता ही है। वास्तवमें जिन-जीवोंको साध्यकी सिद्धि करनी होती है, वे जीव अपने साधनमें कभी भूल नहीं करते। जिनको किसी अमिट संयोग प्राणप्रियाके दर्शनोंकी और उसको अर्धाङ्गिणी बनानेकी कामना

होती है वे सदा ही परम दृढ़ताके साथ उद्योगशील रहते हैं। सुधाके स्वादका जो रसिक हो जाता है वह सर्व स्वादोंसे रहित परमानन्दमई **स्वसमरानन्द**की महिमाका विलास करनेमें परम संतोषी रहता है।

(१६)

परम सुखमई राज्यका लोभी होकर यह आत्मवीर मोहके निमित्त कारण बाह्य परिग्रहके भारको त्याग हलका हो मोह राजाको दिखला रहा है कि अब मैं सर्वथा वेधड़क हो तेरी सेनाके नाश करनेमें उद्यत हो गया हूं। मैंने वैराग्य-धाराको रखनेवाली तीव्र ध्यानमई खड्ग हाथमें उठाई है और सर्व प्रपंचजालसे छूट गया हूं। इसी लिये वस्त्र भी उतार डाले हैं, क्योंकि एक लंगो-टीका संबंध भी इस मनुष्यके अनेक विकल्प पैदा करता है-ऐसा धीरवीर परमहंस स्वरूप यह वीर निश्चल होकर धर्मध्यानके द्वारा मोहसे लड़नेको तैयार हो गया है। जब यह आत्मा स्वरूप रूप-समुद्रमें गुप्त हो डुबकी लगाता है तब सातवें गुणस्थानमें स्थिर हो जाता है। जब विकल्पमई विचारोंमें उलझता है तब छठेमें ही ठहरता है। प्रमादके कारण छठे स्थानका नाम **प्रमत्तगुण-स्थान** है। आहार लेते हुए ग्रासका निगलना तथा विहार करते हुए समितिका पालन जब करता है तब छठी भूमिमें रहता है, परन्तु इनकार्यों ही के अंतरालमें जब स्वस्वरूपमें रमता है तब सातवीं भूमिमें आजाता है। इस प्रकार चढ़ाव उतार करते हुए भी मोहकी सेनाको खूब साहसके साथ दबा रहा है। इस समय प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ सेनापतियोंकी सेनाने

तो आना ही बन्द कर दिया। केवल ६३ प्रकृतियोंकी ही कर्म फौज आती है तथा इसके साथ युद्ध करनेवाली सेनाओंमें पहिले ८७ प्रकृति थीं, अब प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यंगति तिर्यंगायु, उद्योत और नीच गोत्र युद्धस्थलसे चल दिये केवल ७९ प्रकारकी सेना रह गई। परन्तु इस समय आत्मवीरके पराक्रमको देख मोहकी ये तीन प्रकारकी सेना युद्धस्थलमें आ तो गई, परन्तु आत्मवीरके साथ प्रीति उत्पन्न होनेके कारण इसकी हानि न करके मदद ही करती हैं। ये तीर्थंकर, आहारक अंगाहारक प्रकृतियोंकी सेनाएँ हैं। इनको भी मिलाया जाय तो आत्मवीरके सामने ८१ सेनाएँ खड़ी हैं। यदि मोहकी फौजको देखा जाय तो इस समय नरकायु और तिर्यंक्आयुके सिवाय १४६ की सत्ता विद्यमान है। छठी श्रेणीमें तिर्यगायु सत्तासे भागती है। ऐसी सेनाओंका मुकाबला होते हुए भी यह धीरवीर नहीं घबड़ाता है। अपनी शान्तता, वीतरागतासे अपने परम मित्र विद्याधर द्वारा भेजे हुए दशधर्म, द्वादश तप, द्वादश भावना आदि वीरोंकी सेनाके प्रतापसे यह परमसुखकी रुचिसे भारी युद्ध कर रहा है और इस स्वसमरानंदमें लवलीन हो अतीन्द्रिय आनन्दकी श्रद्धासे परमामृतका पान करता है।

(१७)

मोह-शत्रुसे अत्यन्त साहसके साथ युद्ध करनेवाला चेतन-वीर छठी श्रेणीमें अपने पराक्रमके प्रतापसे जब संज्वलन कषाय और नौ नोकषायकी सेनाओंको अपने वीतरागमय तीक्ष्ण बाण-रूपी परिणामोंके बलसे ऐसा बलहीन बनाता है कि उनका मुख

कुम्हला जाता है; तब यह वीर झटसे सातवीं **अप्रमत्त श्रेणीमें** आ चमकता है। यद्यपि कई बार मोहसे प्रेरित होने पर जब यही तेरह प्रकारकी सेनाएं फिर अपने जोरमें आती हैं तब यह एक श्रेणी नीचे गिर जाता है और फिर अपनी अप्रमत्तताकी सावधानीसे चढ़ जाता है। तथापि अब इस वीरने बहुत ही दृढ़ता पकड़ी है और गिरनेसे हटकर आगेकी श्रेणीमें चढ़नेको ही उत्सुक हो रहा है। धन्य है यह आत्मवीर! इसने अब सातिशय **अप्रमत्तके** पथपर पग धरा है तथा अनंतानुबन्धी क्रोध मान-माया लोभकी सेनाओंको ऐसा लज्जामान कर दिया है कि वे अपने नामको छोड़कर अप्रत्याख्यानादिकी सेनाओंमें जा मिल गई हैं तथा दर्शन मोहनीयकी तीनों प्रकारकी सेनाओंको ऐसा दबा दिया है कि वे अब बहुत काल तक अपना सिर न उठाएगी। इस क्रियाके साहसको देख इसके परम मित्र विद्याधरने इसकी सहायको **द्वितीयोपशमसम्यक्त** नामके योद्धाको भेज दिया है। इसकी मददके बलसे अब यह अपने विशुद्ध परिणामरूपी दलोंको अधःप्रवृत्तिकरणके चक्रव्यूहमें सजाता है और चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंको उपशम करनेका प्रयत्न करता है। इस अप्रमत्तश्रेणीमें इस आत्म-वीरके पास **अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, अरति शोक** और **असाता**-इन छह प्रकृतियोंकी सेनाओंने आना बिलकुल बन्द कर दिया है। इसके विरुद्ध यह एक अचम्भेकी बात देखनेमें आई है कि मोहकी सेनासे चिढ़कर **आहारक शरीर** और **आहारक अंगोपांग**की सेना इसके कार्यमें सहाय पहुंचानेको इसके पास आने लगी हैं।

यद्यपि ये सहकारी हैं तथापि इस सावधान सम्यक्‌वीरको इनका भी विश्वास नहीं। वह इनको भी अपना विरोधी ही जानता है। आत्म-वीरके ज्ञानकी अपेक्षा अब इसके मुकाबलेमें ५९ प्रकारकी सेनाएं आ रही हैं। छठी श्रेणीमें ८१ प्रकारकी सेनाएं मुकाबलेमें युद्ध कर रही थीं। अब **आहारक शरीर आहारक अंगोपांग**, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला और स्त्यानगृद्धि—इन ५ ने मुकाबला करना बन्द करदिया है, केवल ७६ ही सामने खड़ी हैं। यद्यपि मोहके युद्ध-स्थलमें अभीतक १४६ प्रकारकी सेनाएं बैठी हुई हैं। ऐसी हालत होनेपर भी इस साहसीको धर्मध्यानके चारों पायोंका पूरा २ बल है। जब आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय तथा स्थानविचय ध्यानके सहकारी पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानकी तलवारें चमकती हैं तब मोहकी सारी फौज कांप जाती है और इधर आत्म-वीरकी वीतराग परिणतिरूपी सेनाकी आवश्रीमें अत्यंत तीक्ष्ण वेग होता है, उन्मादकी उन्मत्तता चढ़ती जाती है। इसीके जोरसे अब यह उपशम श्रेणीमें चढ़ मोहके दलोंको मूर्छित बनानेका प्रयत्न करनेको उद्यमवंत हो गया है।

धन्य है आत्मज्ञानकी महिमा और निराकी शान्तिकी अभिलाषा! यह धीरवीर मुनि अनेक परीषहोंको सहता है। अनेक प्रकार देव, मनुष्य, तिर्यंच व आकस्मिक घटनाओंद्वारा पीड़ित किये जानेपर भी अपने कर्तव्यसे जरा भी विमुख नहीं होता है। आपमें आप ही आपसे ही आपेको आपके लिये

अपना रहा है । इसकी चित्त-मग्नता और एकाग्रताका क्या ठिकाना है । इस अपूर्व अनुभव स्वादमें रमता हुआ यह वीर मोहसे युद्ध करता हुआ भी परम शांत रहता है और **स्वसमरानंद**का विलास देख परम संतोष माना करता है ।

(१८)

आत्मरसिक वीर भवनीरके तीरमें धीर हो अपनी गंभीर शक्तिसे धर्मध्यानके चार सरदारोंको अपने वसमें किये हुए उनके द्वारा ऐसा एकाग्रमन हो कर्मोंसे युद्ध करता है कि अब इसके साम्हने ४ संज्वलन और ९ नोकषायकी सेनाओंका इतना बल घट गया है कि वे इसको सातवीं श्रेणीसे नीचे नहीं गिरा सके। यह परमात्मतत्त्ववेदी वैराग्य-अमृतके भोजनसे पुष्टताको प्राप्त अपने दलसमूहके संघट्टसे मोहशत्रुकी सत्ताभूमिमें विराजित अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभकी सेनाओंको ऐसा दबा रहा है कि वे सर्व सेनाएं बहुत ही दुःखी हो गई हैं और अपने बंधदलको तोड़कर प्रत्याख्यानावरणादि कषायोंके दलोंमें जा छिपी हैं अर्थात् अपनेको विसंयोजित कर लिया है तथा दर्शनमोहनीकी तीनों प्रकृतिमई सेनाओंको भी ऐसा दबा देता है कि वे बहुत कालतक उठनेके लिये असमर्थ हो जाती हैं । इस क्रियाके किये जानेके पश्चात् इसका नाम द्वितीयोपशम सम्यक्दृष्टि हो जाता है और तब श्रीगुरु विद्याधर आकर इसकी पीठ ठोकते हैं और शाबासी देते हुए उत्तेजित करते हैं कि, हे भव्य ! अब तू साहसको न छोड़ और जिन दलोंने तेरे वीतराग चारित्ररूपी पुत्रको कैद कर रक्खा है उन दलोंको निवारण कर अर्थात् चारित्र-

मोहनीकी २१ प्रकृतिरूपी सेनाओंको दबानेमें प्रयत्न कर। इस प्रकार हिम्मत पा वह वीर चुप नहीं होता, अपने शुद्ध परिणाम-रूपी फौजोंमें ऐसी उत्तेजना करता है कि वे अधःप्रवृत्तिकरणके समान समय २ अपनेमें अनंतगुणी शक्ति बढ़ाते हैं। शक्तिके बढ़ते ही यह वीर झटसे आठवीं श्रेणी अपूर्वकरणमें चला जाता है और **पृथक्त्ववितर्कविचार** शुक्लध्यानरूपी योद्धाके बलसे अपूर्व २ छटाको बढ़ाता हुआ चारित्र मोहनीके दलको उपशमा रहा है। इसकी ऐसी तेजीके कारण मोहकी सेनामें देवायुकी फौजोंका आना बंद होगया। सातवीं श्रेणीमें ५९ प्रकृतियोंके नवीन दल आते थे। अब ५८ के ही आते हैं तथा सम्यक्त प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तास्फाटिक संह-ननकी फौजोंने इस आत्मवीरका साम्हना करना छोड़ दिया। इसके पहले ७६ प्रकृतिका दल मुकाबलेमें था। अब केवल ७२ का ही रह गया है। तो भी मोहशत्रुकी युद्ध सत्ता भूमिमें अभी १४२ प्रकृतियोंका दल बैठा हुआ है। यहां अनंतानुबन्धी ४. कषायोंका दल नहीं रहा है। इस प्रकार आत्मवीर और मोह–शत्रुका भयानक युद्ध हो रहा है। आत्मवीर शिवतियाके मोहमें फंसा हुआ इस आशामें उछल कूद रहा है कि वह अब शीघ्र ही मुक्त महलमें पहुंचकर अपना मनोरथ सिद्ध कर लेगा। उसे यह नहीं खबर है कि अभी तक मोहकी सेनाओंके सबसे प्रबल योद्धा अनंतानुबंधी कषाय और दर्शन मोहनीयकी सात प्रकारकी सेना-ओंका संहार नहीं हुआ है और वे इस घातमें हैं कि यह अपने प्रयत्नसे जरा थके कि हम इसको गिरा देवें और कैद कर लेवें।

तौ भी इस समय यह प्रथम शुक्लध्यानके शुद्ध शुक्ल-रंगमें रंजायमान होता हुआ अपनी अहं बुद्धिमें उन्मत्त होकर सर्व जगतको भुला चुका है और अपनेको ही शुद्ध चिन्मात्र ज्योतिका धारक परमात्मा समझ रहा है। मैं और परमात्मा भिन्न २ है, इस विकल्पको भी उड़ा दिया है। मैं ध्यान करता हूं ऐसा कर्त्तापनेका अहंकार भी नहीं रहा है। इस समय यह स्वानुभव रसका भोग भोग रहा है और उसके रसमें ऐसा मगन हो रहा है जैसा एक भ्रमर कमलकी सुगंधमें मुग्ध हो जावे। तथापि इस विकल्पसे दूरवर्ती है कि मैं स्वानुभव कर रहा हूं। बाहरसे देखो तो इस वीरकी मूर्ति सुमेरु पर्वतके समान निश्चल है। यद्यपि अंतरंगमें श्रुतके भावका व श्रुतके पदका व योगके आलम्बनका परिवर्तन हो जाता है तो भी इस स्वरूप मगनकी बुद्धिमें कुछ नहीं झलकता। जैसे उन्मत्त पुरुषके मुखकी और शरीरकी चेष्टा बदलती है, परंतु उसके रंगमें बाधाकारक नहीं होती। आठवें पदमें विराजित ध्यानी आत्मवीरकी ऐसी ही कोई अपूर्व परिणति है। इसकी निराली छटा इसीके अनुभवगोचर है या श्रीसर्वज्ञ परमात्माके ज्ञानमें प्रतिबिम्बित है। यह योद्धा अपने गुरु विद्याधरकी कृपासे आत्मीक सम्पदाका उपभोग करता हुआ मोह शत्रुके मुकाबलेमें किसी प्रकार न दबता हुआ स्वसमरानन्दके सुखमें अद्भुत तृप्तिकी उपलब्धि कर रहा है।

(१९)

परमात्मतत्त्व-वेदी, निजानन्द-अनुरागी, स्वसंवेदन-भागी शिवरमणि-आशक्तधारी निजगुण साहस-विस्तारी आत्मवीर आठवें स्वस्वरूपकी मगनतासे ऐसा बलिष्ठ हो गया है कि इसने

अपने शुद्ध परिणामरूपी सेनाओंके जोरसे मोहशत्रुकी १६ प्रकारकी सेनाओंका नवीन आगमन रोक दिया है और एकाएक आठवेंसे नवमें गुणस्थानमें आगया है। जिन शुद्ध परिणामोंके द्वारा चारित्रमोहनीके वलोंको निर्मूल करनेके लिये इस वीरने सातवें दरवाजेमें करणलब्धिका प्रारंभ किया था उन शुद्ध परिणामोंकी जो अपूर्व छटा आठवीं श्रेणीमें थी उससे अति विलक्षण महिमा इस समय इन शुद्ध परिणामरूपी दलोंकी हो गई है।

इस अनिवृत्तिकरणमें जितने समय इस आत्मवीरको ठहरना होता है उतने समयके लिये प्रति समय अद्भुत ही अद्भुत शुद्ध परिणामोंकी सेना विद्याधर गुरुद्वारा प्रेषित की जारही है। इस श्रेणीकी कुछ ऐसी गति है कि जितने वीर, योद्धा, विद्याधर गुरुकी कृपासे मोह–शत्रुसे युद्ध करते २ एक ही समयमें इसमें आजाते हैं उन सबके लिये एकसी ही शुद्ध परिणामोंकी सेना सहायताके लिये आ जाती है। इन परिणामरूपी योद्धाओंकी आहट पाते ही नीचे लिखी ३६ प्रकारकी सेनाओंको मोह राजाने भेजना बंदकर दिया है। निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त, विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्माणशरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय।

अब यहां केवल २२ प्रकृतियोंकी ही सेना मोहद्वारा प्रेषित की जाती है। आठवीं श्रेणीमें जब ७२ प्रकृतियोंकी सेना

मुकाबलेमें थी अब यहां हास्य, रति, अति शोक, भय, जुगुप्सा इन छह प्रकारकी सेनाओंने अपनी प्रमाद अवस्था कर ली है, केवल १६ ही दल सन्मुख हैं । यद्यपि मोह-राजाके चक्रव्यूहके क्षेत्रमें अब भी १४२ दलोंका ही अस्तित्व है । अंतर्मुहूर्तके समयके अंदर ही इस आत्मवीरने अपने पराक्रम और शुक्ल ध्यानमई दलोंके प्रतापसे मोहके प्रबल योद्धा क्रोध, मान, माया, लोभ और वेदोंकी सेनाओंको विह्वल और निर्बल कर दिया है । सम्यग्ज्ञान द्वारा पवनसे प्रेरित वीतराग चारित्ररूपी ध्यानकी अग्निको जिस समय यह आत्मवीर प्रज्वलित करता है एकाएक कर्मोंके दल शिथिलताको प्राप्त हो जाते हैं । जितनी २ ढिलाई कर्मोंके दलोंमें होती है उतनी २ पुष्टता आत्मवीरकी शुद्ध परिणामरूपी सेनाओंमें होती जाती है । इस समय आत्मवीरकी सेनाओंमें अपूर्व आनन्द है । अपने साहसके उमंगसे डूबी हुई अपनी सेनाको देखकर यह आत्मवीर परमसंतोषित हो रहा है, भव-कीचड़से मानो आपको निकला हुआ मान रहा है, जगतके जंजालोंसे मानो पृथक् हो रहा है । यद्यपि यह वीर निजस्वरूपानुभवमें लीन है और बुद्धिपूर्वक विकल्पोंसे पृथक् है तथापि विकल्पमें ग्रसित तत्त्व-खोजी पुरुषोंके लिये इस आत्मवीरकी अवस्था अनेक प्रकारसे मनन करनेके योग्य है। वास्तवमें जिन जीवोंको मोहके फंदोंका पता लग जाता है और जो जिन विधिका कुछ भी ठिकाना पा लेते हैं तथा अपने विश्रामपदकी श्रद्धामें तन्मय हो जाते हैं वे जीव मोहसे समर करनेमें किसी प्रकार नहीं हटते और कमर बांधकर जब कर्मदलके भगानेको उद्यत हो जाते हैं तब अपने

उद्योगके अनुभवमें **स्वसमरानन्दको** पं ते हुए विशाल आत्म-भावके प्रकाशमें उद्योतरूप रहते हैं ।

(२०)

महावीर धीर समरशील उत्साह–गंभीर आत्मराजा, मोहके युद्धमें विजयको प्राप्त करता हुआ अपनी अटल शक्ति और विद्याधर गुरुकी सहायतासे जो आनन्द और उमंग प्राप्त कर रहा है उसका वर्णन करना वाणीसे अगोचर है । भला जिस रसिकको आत्म–रससे बने हुए परम अमृतमई व्यञ्जनोंका स्वाद मिल जाता है वह जिव्हाइन्द्रीकी तृष्णाके निशानोंकी क्या परवाह कर सकता है ? उसके स्वाभिमानकी गणना गणनासे भी बाह्य है । उसकी शांतताकी शीतलता चंदनमालतीको भी लजानेवाली है । उसकी धीरताकी अक्षोभता पर्वतको भी तिरस्कार करनेवाली है ! निज विलासिनी प्रिय अनुभूति सखीकी रुचि इस आत्मानंद आशकको अपने कार्यमें परम दृढ़ किये हुए है । अनिवृत्तिकरणके पदमें यह धीर मोह नृपके परम विशाल कषाय–योद्धाओंकी सेनाका बल प्रति समय अधिक २ घटाता जा रहा है । इसकी शुक्लध्यानरूपी खड्गके चमकनेसे मोहका सारा बल कम्पित हो रहा है, युद्ध स्थलमें पग जमता नहीं । मोह दलकी असावधानी देख आत्मवीर झटसे १० वीं श्रेणीमें चढ़ जाता है और **सूक्ष्मसांपरायके** स्थलमें कषायोंमेंसे केवल **संज्वलनलोभको** ही अपने सामने अत्यन्त कृश और दुर्बल अवस्थामें खड़ा पाता है । अब मोह नृपने लाचार हो **पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, मान, माया, लोभ,** ऐसे पांच प्रकारके सेनादलको युद्धस्थलमें भेजना बन्द

कर दिया है, केवल १७ प्रकृतियोंकी नई सेना आती है। तौ भी सामना करनेको अभी ६० दलोंकी एकत्रता हो रही है। केवल यहां स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया ऐसे छह दलोंने सामना करना बंदकर दिया है। परन्तु मोहके सत्तामय युद्धस्थलमें अभी १४२ प्रकृतियोंकी सेना मौजूद है। जितनी ९ वीं में थी उतनी ही है। मोहको युद्धमें हटाना कोई सुगम कार्य नहीं है। मोहके गोरखधन्धेको काट डालना किसी साधारण गरुड़का काम नहीं है। इसके लिये सच्चा श्रद्धानी साहसी वीर पुरुष ही होना चाहिये। जिसने तत्वामृतसे अपने आत्माको धोना प्रारम्भ किया है, जिसने सर्व ओरसे उपयोग हटा एक निजमें ही निजको थामा है, जिसने सम्यक्दर्शन, ज्ञान चारित्रके तीनपनेको मिटा दिया है, जिसने निज शक्तिकी लुप्तता हटा डाली है-वही धीरवीर इस पदमें पहुंचकर स्थिर हो जाता है और रहे सहे अत्यन्त निर्बल लोभकी सेनाको भी भगानेका उद्यम करता है। ऐसे ही उद्योगशील मोक्ष पुरुषार्थीको भवविपिननिरोधक स्वसमरानंदका विलास आत्माके अनुभवमें प्राप्त होता है।

(२१)

गुणगणसमृद्धि-धारी अनुपम धाम-विहारी चैतन्यपद-विस्तारी मुक्तितिया संमोहकारी आत्मवीर मोहके साथ युद्ध करते २ अति दृढ़ हो गया है। यह वीर अपने शुद्धोपयोग योद्धाके बलिष्ठ सिपाहियोंके प्रभावसे संज्वलन-लोभकी सेनाको ऐसा छिन्नभिन्न और दुःखी कर देता है कि वह सारी सेना दबकर

नीचे बैठ जाती है और यह एकाएक ग्यारहवीं श्रेणीमें पहुंच जाता है। अब यहां चारित्रमोहनीयकी सर्व.२१ प्रकृतियोंकी सेना उपशांत हो गई है। वीतराग चारित्ररूपी परम मित्रकी अब सहायता प्राप्त हो गई है। उपशांतमोह गुणस्थानके स्वभावमें निश्चल रह वीतराग विज्ञानताका आनन्द अनुभव करना इसका कार्य हो गया है। अब यहां मोहके दबनेसे ज्ञानावर्णीकी ५, दर्शनावर्णीकी ४, अंतरायकी ५, नामकर्ममें यशकीर्ति और उच्चगोत्र ऐसे. १६ प्रकृतियोंकी नवीन सेनाओंका आना बन्द हो गया है, केवल सातावेदनीयकी ही सेना आती है। इसके पहले ६० प्रकृतियोंकी सेना सामने खड़ी थी, यहां संज्वलन-लोभने विदा ली, केवल ५९ सेनाएं ही मुकाबलेमें हैं। यद्यपि मोहराजाके युद्ध-क्षेत्रमें अब भी १४२ प्रकारकी सेनाएं डेरा डाले पड़ी हैं। यथाख्यातचारित्रके सम्यक् अनुभवमें इस आत्मवीरके शुद्धोपयोगकी अनुपम छटाका वचनातीत आनंद प्राप्त हो रहा है। इसके आनंदमें मैं सिद्धस्वरूप हूं-यह विकल्प भी स्थान नहीं पाता। अब यह मुक्ति-महलके बहुत करीब हो गया है, अपनी पूर्व अवस्था क्या थी यह भी विकल्प नहीं उठाता। आत्मावीर अपने अंतरंगमें ६ द्रव्यका नाटक देख रहा है, परन्तु आश्चर्य यही है कि उसमें अपने भावको रमाता नहीं। सिवाय निजात्म भूमिके उसका उपयोग कहीं जाता नहीं। उस भूमिमें विराजित निज अनुभूति सखीसे ही हर समय वार्तालाप करना इसका काम हो गया है। यद्यपि अभी बहुतसी सेनाएं खड़ी हैं तथापि मोहके खास.२ योद्धाओंके युद्धसे मुंह मोड़ लेनेपर यह

बिलकुल बेखटके हो गया है जैसे कोई युद्धसे लड़ते २ थककर विश्राम लेता है और तब आराममें मग्न हो जाता है। ऐसे ही यह धीरवीर अपने अन्तरंगमें अपने आन्तरिक चैनमें डूब गया है। सत्य तो यह है कि जो साहसी होता है वही उद्योगके बलसे मीठे फलोंको चखता है। यह आत्मधन-धनी अपने प्रभावशाली तेजसे निजमें लय हो **स्वसमरानन्दका** स्वाद-भोग अकल और अमन हो रहा है।

(२२)

यह आत्माराम ग्यारहवें गुणस्थानमें पहुंच कर और सारे मोहके खास योद्धाओंको दबाकर परम शांत और यथाख्यातचारित्रमें मग्न हो गया है और अपने शुक्लध्यानकी तन्मयतामें लीन हो कर्म-शत्रुओंके बलसे मानो निडर हो गया है। इसको इस वीतराग परिणतिमें रमते हुए जो आनन्द होता है उसका स्वाद लेते हुए अन्य सर्व स्वाद व अन्य सर्व विचार लुप्तरूप हो गये हैं। जैसे कोई विषयान्ध राजा किसी स्त्रीके प्रेममें मुग्ध होता हुआ रनवासमें बैठा हो और उसके किलेके बाहर शत्रुकी सेना डेरा डाले पड़ी हुई हो। उसी तरह इस श्रेणीवालेकी दशा हो रही है। इस वीर आत्माकी ध्यान खड्गकी चोटोंसे मोहनीयकर्मकी जो मुख्य २ सेनाएं चपेट खाकर गिर पड़ी थीं और थोड़ी देर याने केवल अन्तर्मुहूर्तके लिये अचेत हो गई थीं, वे एकाएक सचेत होनी शुरू होती हैं। देखते २ ही संज्वलन लोभरूपी योद्धा, जो अभी थोड़ी देर पहले ही अचेत हो गया था, उठता है और अपने आक्रमणसे उस बेखबर आत्मवीरको ऐसा दबाता

है कि उसकी वह स्वरूपसावधानी टूट जाती है और लाचार हो विचारेको ग्यारहवां स्थान छोड़ना पड़ता है। दसवेंमें आता है। वहां कुछ दम लेता ही है कि इसको निर्बल देख संज्वलन क्रोध, मान, माया व नोकषायकी सेनाएं भी घेर लेती हैं और इसको दसवेंसे नौवेंमें, नौवेंसे आठवेंमें और आठवेंसे हटाकर सातवेंमें पटक देती हैं। ज्यों २ यह गिरता है—इसकी ऊंची सावधानी नीची होती जाती है, त्यों २ ही कषायोंकी सेनाएं बल पकड़ती जाती हैं। वास्तवमें जो युद्धमें लड़नेवाले हैं उनके लिये बड़ीभारी सावधानी चाहिये। यह युद्ध परिणामोंका है, इसमें विशुद्धताकी कमी ही असावधानीका कारण है। कुछ आत्मवीरकी प्रमाद अवस्था नहीं।

सातवें गुणस्थानमें ठहरा ही था कि एकाएक अप्रत्याख्यानावरणी और प्रत्याख्यानावरणीकषाय उदयमें आकर उसको दबा देते हैं और यह विचारा गिरकर सातवेंसे छठे और छठेसे चौथेमें आ जाता है। देखिये, विशुद्धरूप परिणामोंकी सेनाओंकी निर्बलता जो कषायकी सेनाओंसे दबती चली जाती है। ग्यारहवेंका धनी चौथेमें आ गया है। चारित्रकी ममता हट गई है। संयमके छूटनेसे भावोंमें चारित्र हीनता छा गई है। केवल श्रद्धान और स्वरूपाचरण चारित्र ही मौजूद हैं यद्यपि चारित्रका आनन्द विघट गया है तथापि सम्यक्तका आनन्द तो भी इसको दृढ़ बनाये हुए है और फिर आगे चढ़ानेकी उत्सुकता रख रहा है। परन्तु दबते हुए को दबना ही पड़ता है। एकाएक मोहका सर्वसे प्रबल शत्रु मिथ्यात्व आता है और अपनी प्रबल सेनाओंके बलसे ऐसा

दबाता है कि आत्मवीरके सारे सहायक योद्धा हट जाते हैं और उसको चौथेसे पहलेमें आ जाना पड़ता है। तब मिथ्यात्व भूमिमें पहलेके समान आकर संसारी अरुचिवान होकर पूर्णतया मोहके पंजेमें दब जाता है और यहां विषयोंकी अन्ध-श्रद्धा चित्तको आकुलित कर लेती है। तब इस विचारेको **स्वसमरानन्द**का सुख मिलना बन्द हो जाता है। हा कष्ट! कहां अमृतका पान और कहां विषका स्वाद। अचंभा नहीं।

(२३)

जो आत्माराम विद्याधर गुरुकी असीमकृपासे एक महामोहके कारागारसे निकल भागा था वह फिर पहले किसी दशामें होकर अतिशय हीनदीन हो गया है। विषयोंकी तृष्णाने उसके चित्तको आकुलित कर दिया है। चित्तमें अनेक प्रकारकी चाहनाएँ उठती हैं, किन्तु पूरी होती नहीं, इस कारण यह आत्माराम अतिशय दुखी हो रहा है। यह यकायक एक उपवनमें जाता है और एक जनरहित शून्य वट-वृक्षकी छायामें बैठ जाता है। उस समय अपनी हालतको इससे पहलेकी दशासे मिलान करता है, तो अपनेको मन और तन दोनोंमें अति क्लेशित पाता है। अपने भावोंकी अशुभताको सोच २ कर रह २ जाता है कि इसका कारण क्या है जो मेरेमें ऐसी गन्दगी आ गई है, मेरी सारी वीरता मुझसे जुदी हो गई है, निर्बलताने दबा लिया है; क्या करूं! किधर जाऊं? इतना विचार आते ही चट कषायकी तीव्र कृष्णालेश्या एक ऐसा थप्पड़ मारती है कि तुरंत ही किसी इन्द्रीके विषयकी चाहसे मोहित हो उसी चाहसे तनमनको जलाने लग

जाता है। यकायक उधरसे परम दयालु विद्याधर गुरु आते हैं और दूसरे इस आत्मकी ऐसी अधम चेष्टा देख सोचते हैं कि अरे क्या हो गया! यह तो वही है जिसने अपने बलसे मोह राजाके सर्वसे प्रबल कषायरूपी सर्व वीरोंको दवा दिया था और यह ग्यारहवें स्थानपर पहुंचा गया था, केवल तीन ही स्थान तय करना बाक़ी रहे थे। यदि इन्हें और तय कर लेता तो अवश्य तीन लोकका नाथ होकर स्वानुभूतिका आनन्द सदाके लिये भोगता। पर कोई आश्चर्य नहीं। जबतक शत्रुका नाश न किया जाय तबतक उसके जोर पकड़ लेनेमें क्या रोक हो सकती है। वास्तवमें अब तो इसकी फिर पहले कीसी बुरी दशा हो रही है; परन्तु यह साहसी और उद्योगी है; अतएव परोपकारता करना चाहिये, भेजता है, देशना आती है और अपना प्रभाव उस पर जमानेके लिए इसी वक्त अपनी पुत्री देशनालब्धिको समझानेके लिये उसीके सामने बैठ अपने इष्टदेव परमशुद्ध परमात्माका मननकर भवातापकी गर्मी मिटाती है और निजस्वरूपके प्रेममें रत हो हृदयमें शांतिधारा बहा उसीके रसको स्वयं पान करती है तथा कुछ रसके छींटे उस दुखी आत्माके ऊपर डालती है। यह उस छींटेको पाकर यकायक चौंकता है, फिर चाहकी दाहसे जलने लग जाताहै।

सच है मिथ्यात् बैरी इस जीवका परमशत्रु है। जो साहकर इसका सर्वथा विध्वंश कर डालते हैं, वे ही **स्वसमरानन्द**को पाकर जगनायक हो जाते हैं।

(२४)

परमकल्याणरूपिणी जगदुद्धारकारिणी सुपथ–प्रकाशिनी विद्याधरकी सुपुत्री "देशनालब्धि" के बारबार परमामृतके

छिड़कनेसे ग्लानितचित्त आत्मारामकी मलीनता हटती है और यकायक जागृत हो अपने वास्तविक स्वरूपको विचारने लग जाता है कि, ओहो ! मैं तो परम शुद्ध सिद्ध सदृश ज्ञानानन्दी आत्मा हूं, मेरी जाति और सिद्ध महाराजकी जातिमें कोई अन्तर नहीं, मेरेमें वर्तमानमें जो मलीनता है उसका कारण मेरा कर्म-सेना-ओंसे घिरा हुआ रहना है। सच है, वृथा ही इन्द्रिय-जनित सुखोंको सुख कल्पकर आकुल व्याकुल हो रहा हूं। इन दुष्ट इन्द्रियोंसे किसी भी आत्माकी तृप्ति नहीं हो सकी। अहा ! देशना सखी बड़ी हितकारिणी है। यह सत्य कहती है। मैं जिस सुखकी चाहना करता हूं वह सुख तो मेरा स्वभाव है। मेरे ही में विद्यमान है। मैं अपने भंडारको भूलकर दुखी हो रहा हूं। आज इस सखीकी कृपासे मेरे चित्तको बड़ा ही आल्हाद हुआ है, ऐसा विचार उस सखीसे हाथ जोड़ कहता है कि, हे भगिनी तुम इसी प्रकार मुझपर कृपा करके प्रति दिवस अपना पुष्ट धर्मामृत-जल मेरेमें सींचा करो, जिससे मेरा निर्बलपना जावे और साहस पैदा हो, कि मैं फिर उद्यम करके मोहके चुंगलसे छूटूं। इस प्रकार इस आत्मारामकी चेष्टा देख आयु बिना सातों कर्मोंकी सेनाएं जो इसको घेरे हुए हैं कांप उठती हैं। इतना ही नहीं सेनामेंके कई कायर सिपाही अपने बलको घटा हुआ मानने लगते हैं। आत्मारामकी प्रार्थनानुसार देशनालब्धि अपना पुनः पुनः उपकार प्रदर्शित करती है। ज्यों २ इसके ऊपर देशनाका असर पड़ता है, कर्म-सेनाका बल शिथिल और स्थिति संकोचरूप होती जाती है। यहां तक कि ७० कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति घटकर एक

कोड़ाकोड़ी सागरके भीतरकी ही रह जाती है। देशनालब्धिसे ऐसा शुभ असर होता देख परम दयालु विद्यागुरु 'प्रायोग्य-लब्धि'को भेजते हैं। इस सखीके बलसे कर्म-सेना और भी अपने जोर और स्थितिको घटा लेती है। आत्माराम अपने साहसको बढ़ाता है और इस सखीके पूर्ण बलको पा अनन्तानु-बन्धी क्रोध अ० मान, अ० माया अ० लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक्त मिथ्यात् और सत्यक् प्रकृति मिथ्यात-इन सात योद्धाओंके बलको नाश करनेका दृढ़ संकल्प कर 'करणलब्धि'की ज्यों ही सहायता पाता है, त्योंही समय २ पर मोहकी सेनाको दबाए जाता है और अपने पास विशुद्ध परिणामोंकी सेनाओंको बढ़ाए आता है। अंतर्मुहूर्तके इस प्रयत्नसे वह आत्मवीर अति शीघ्र ही इन सातोंको दबा उपशमसम्यक्तकी श्रेणीपर चढ़कर अपनी विजयका डंका बजाता और पुनः शिव-रमणीमें आशक्त हो जगत्के क्षणिक सुखोंसे बाह्य स्वसमरानन्दका अनुभव लेता हुआ सुखी होता है।

(२५)

आत्मवीरको मोहनृपके जंजालसे बचनेके लिये जो कष्ट उठाना पडते है उनका अनुभव उसे ही है। धन्य है इस परि-श्रमीका साहस, जो इसने मोहनृपकी सेनाके बलको एक दफे दबा लिया था और जो अपने स्थानपर पहुंचनेके निकट ही था, पर उस मोहके तीव्र धोकेमें आजानेपर यह ऐसा गिरा कि महा मिथ्यात शत्रुके आधीन हो गया, पर इसने तब भी हिम्मत न हारी और इस प्रकार दृढ़ता रखनेसे अन्तमें यह सम्यक्तकी

श्रेणीपर चढ़ ही गया। यह बात देख मोह-नृपके पक्षियोंको बड़ा ही कष्ट हुआ है और वे जिस तिस प्रकार इस वीरको इस श्रेणीसे डिगाना चाहते हैं, परन्तु इस समय यह धीर होकर अपने स्वरूपको न भुलाकर वहांसे अपना कदम नहीं हटाता है। **दर्शनमोहनीय** योद्धाके तीन आधीन चाकर **मिथ्यात्त्व, सम्यग्मिथ्यात्त्व और सम्यक्त प्रकृति मिथ्यात्त्व** यद्यपि दब गये हैं, परन्तु युद्ध भूमिसे हटे नहीं हैं और मोह-नृपसे प्रेरित किये जानेपर तीनों ही इस दावमें लगे हैं कि इसको इस श्रेणीसे च्युत करें। परन्तु इस वीरके अंतरंगमें अपने आत्मशुद्ध बुद्ध परम तेजस्वी बलकी ऐसी श्रद्धा विद्यमान है और यह **प्रशम, संवेग, अनुकम्प और आस्तिक्य** योद्धाओंकी सेनाओंको शत्रुकी विपक्षमें ऐसी दृढ़तासे जमाए है कि इसकी **परिणाम** रूपी सेना-दलोंके सामने उन तीनोंकी सेनाओंका कुछ बल नहीं चलता। परन्तु उन तीनोंकी सेनाओंमेंसे **सम्यक्तप्रकृति**-की सेना बड़ी चतुर है, देखनेमें बड़ी सरल मालूम होती है। उसने आत्मवीरकी सेनामें दाव पाकर ऐसा मेल बढ़ाया कि उसके कम्पमें जाकर सेना दलको मलीन करने लगी, आत्म वीरकी सेनाको शिथिल करनेका उपदेश देने लगी। कभी२ भोले जीव मोहमें पड़ अपनी दृढ़ता गमा बैठते हैं। ठीक यही हालत इसकी हुई। आत्मवीर यद्यपि इस श्रेणीसे च्युत नहीं हुआ है तथापि सम्यक्तप्रकृतिकी सेनाका प्रभाव पड़ जानेसे चल, मलिन, अगाढ़रूप हो जाया करता है। यद्यपि इसको मोक्षके अनुपम आनन्दकी श्रद्धा है तथापि कभी २ सशंकित हो जाता

है और फिर एकाएक सम्हल जाता है। कभी २ इन्द्रिय विषयोंकी चाहनाको उपादेय मानने लगता है कि एकाएक सम्हल जाता है। इस तरह १९ मल दोषोंमेंसे कभी किसी न किसीके झपेटमें आ जाता है। अपने आत्मद्रव्यको शक्तिकी अपेक्षासे परमात्मासे भिन्न श्रद्धान रखते हुए भी कभी २ निश्चयसे भी भिन्नता समझ लेता है और तुरंत सम्हल जाता है। अपने स्वरूप समाधिमें रहना ही उपादेय समझता है, परन्तु कभी २ पंचपरमेष्ठीकी भक्तिको ही एकान्तसे सर्वथा मोक्ष-कारण जान संतुष्ट हो जाता है; परन्तु तुरंत ही सम्हल जाता है। इस प्रकारकी मलीन, चलित और अगाढ़ अवस्थाको भोगता हुआ भी अपने सम्यक्श्रद्धानसे गिरता नहीं। मिथ्यात्व और मिश्र लाखों ही यत्न करते हैं, परन्तु इसकी थिरताको मिटा नहीं सके। ऐसी **क्षयोपशम** सम्यक्तकी अवस्थामें यह वीर भव सम्बन्धी सुखसे विलक्षण आत्माधीन सुखको ही अपने आपमें अनुभव करता हुआ और अपने सत् स्वरूपी सर्व अन्य द्रव्य, गुण, पर्यायोंसे पृथक् भावता हुआ जो आनंदका अनुभव करता है वह अनुभव परिग्रही सम्यक्तरहित षट्खंडाधिपति चक्रवर्तीको भी नहीं हो सक्ता। धन्य है यह वीर जो इस प्रकार साहस कर प्रबल मोह-शत्रुसे युद्धकर अद्भुत **स्वसमरानन्द**का स्वाद ले रहा है।

(१६)

आज यह आत्मवीर **क्षयोपशमसम्यक्त**के मनोहर वस्त्रोंसे सुसज्जित हो परमात्म परम पावन **महावीर-सन्मति वीर-अतिवीर-वर्द्धमान** स्वरूप श्री शुद्धात्म राजाकी

सभामें उपस्थित हो चहुं ओर दृष्टि फैलाकर देखता है तो सभामें परमसौम्य, सहजानन्दरससे भरपूर स्वाभाविक छटामें कल्लोल करनेवाली अनेक विशाल मूर्तियें विराजमान हैं । ज्ञान; दर्शन, सुख, वीर्य्य, चारित्र, सम्यक्त, क्षमाभाव, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य्य, ततरूप, अततरूप, एकरूप, अनेकरूप, स्वद्रव्यअस्तित्व, परद्रव्यनास्तित्व, स्वक्षेत्र-अस्तित्व, परक्षेत्रनास्तित्व, स्वकालअस्तित्व, परकालअस्तित्व, स्वभावअस्तित्व, परभावनास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि परम शांत गुण परम समताभावके साथमें एक ही स्थलपर अविरोधताके साथ विराजमान हैं । श्रीजिनेन्द्र महावीर परमात्माके उपयोगरूप देहसे अनुभव स्वरूप परम दिव्यध्वनि अपनी गंभीरता, सत्यता, मनोहरता और वीतरागतासे सर्व सभा उपस्थित सभासदोंको आनंदित करती हुई परमचितस्वादुरूप अमृतसे तृप्त कर रही है । इस समयकी छटा निराली है । सर्व सभामें एक समता छा रही है । जैसे शरदऋतुके निर्मल बादलोंसे आकाश आच्छादित हो परम शोभा विस्तारता है उसी तरह अनुभव रसकी धाराओंके बरसनेसे सिवाय इस स्वरसकी शोभाके और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता । इन धाराओंका ऐसा प्रभाव है कि अनादि संसारताप एकदम शान्त होकर मिट जाता है। विषयभोगकी तृषासे त्रासित व्यक्ति अनेक विषयोंमें दौड़ २ कर जानेसे केवल खेद ही उठाता है या अधिक तृषाके बलको बढ़ाकर परम दुःखी होता है । ऐसे दुःखी मोही जीवकी तृषा इस स्वरसके कुछेक बिन्दुओंके पान करनेसे ही मिट जाती है और फिर विषयतृषाकी वासना हट

आती है। परन्तु निज रस सुधा समूहको वारम्बार पीनेकी उत्कंठा और चाहना उमड़ आती है। यह **क्षयोपशमसम्यक्ती** जीव परम वीरोत्तम श्री शुद्ध वीरनाथकी सभाके दर्शन कर, केवल दर्शन ही नहीं, उनके स्वरूपके ध्यानमें लौलीन हो अपना जन्म कृतार्थ मान रहा है, तौ भी कभी २ स्वरूपसे च्युत हो झोका सा विषयानुरागमें चला जाता है-यह इसमें निर्बलता है। अभी इसके युद्धक्षेत्रमें सम्यक्तमोहनी अपनी सेनाको बैठाले हुए है। यह चंचलता उसीकी हुई है। पर यह तुरन्त सम्हलता है और अपने स्वरूपमें आ विराजता है। और श्री आत्मवीरकी निर्वाण लक्ष्मीकी अर्चाके अर्थ और उनके प्रतापसे अपना मोह-अन्धकार मिटानेके लिये ज्ञान-ज्योतिके ज्ञानमय विकल्प स्वरूप अनेक प्रकाशमान **भावदीपकोंको** प्रज्वलित करता है। और इन्हींके प्रकाशमें शोभित होता हुआ व शोभा विस्तारता हुआ **दीपावलीका महान उत्सव** मना रहा है। **श्रीवीर प्रभुकी** अर्चाके अर्थ इसने स्वाभाविक आत्मज्ञानमई **मोदक** तय्यार किये हैं। जिनको ग्रसित करनेसे भाविक जीवोंका क्षुधारूपी रोग सदाके लिये छूट जाता है। इन अनुपम मोदकोंको परम सुन्दर स्फटिक मणिमय निज सत्ताकी रकाबीमें विराजमान कर और तीन रत्नमई परम दीपको स्थापित कर बड़ी ही सार और सुघट भक्तिसे **श्री परमात्म प्रभु** और उनकी **निर्वाण लक्ष्मीकी** पूजन करता है। इस समय और इस क्षण कि जब श्रीमहावीर परमात्माने सर्व परसम्बन्धोंको हटाकर अपनी मुक्तितियासे सम्मेलन कर परम तृप्तताका लाभ किया है-इस **नैवेद्य** और **दीपपूजन**

ही की मुख्यता है। इस समय शुद्ध रुक गया है। इस समय यह सम्यक्ती परम गाढ़ भावसे निज अनुभव रसमें ही मग्न है। फिर किसकी ताव है जो इसके स्वरूपको चलायमान कर सके। यद्यपि यह स्वस्वरूपावरोही है, परन्तु अभी तक मोह राजाके प्रपंचोंसे बाहर नहीं गया है। यह भव्य जीव इस बातको जानता है। इसीलिये भेदविज्ञानशस्त्रको सम्हाले हुए सदा सावधान रह स्वसमरानन्दके अनुभवका भोग भोग रहा है।

(२७)

श्रीवीर जिनेन्द्र परमात्माकी हार्दिक रुचिसे भक्ति और पूजन कर यह क्षयोपशम सम्यक्ती जीव अपनी चौथी श्रेणीमें ही अपनी प्रतीति सम्बन्धी परिणाम रूपी सेवामें चंचलता देख विचारता है और इस चंचलताका कारणरूप सम्यक्तमोहनीकी सेनाओंका अपने ऊपर आक्रमण जान इस कलंकसे अपनेको बचानेके लिये निज शुद्ध स्वभावमई परमानन्द केवलीकी शरण ग्रहण करता है और उनके शुद्ध सद्गुणमई चरणारविन्दोंमें टकटकी लगा निरखता है। विद्याधर सद्गुरुके प्रतापसे तुरन्त ही करणरूप शुद्ध भावोंकी सेनाके दल इस भव्य जीवकी सहायताके लिये प्राप्त हो जाते हैं। यह शुद्ध-भाव दल एकदमसे मोह राजाकी सेनामें घसते हैं। सामने सम्यक्तमोहनीकी सेना और इसके इधर उधर व पीछे मिथ्यात्व मिश्र और अनन्तानुबंधी कषायोंकी सेना उपस्थित है। करणरूप, सेनाके भावरूप सिपाही भेद-विज्ञानमई तीक्ष्ण खड्गको लिये हुए सातों प्रकृतिकी सेनाओंको काट रहे हैं। वास्तवमें इन सेनाओंने बहुरूपियेका रूप बना लिया है। करण

रूप भावोंकी भेद-विज्ञानमई खड्गमें यह गुण है कि वह किसीके प्राण नहीं लेती, परन्तु इसकी वक्रताको मेट देती है, तब वह रूपियापना मिट जाता है, सारे पुद्गलकी मोह-माया अलग हो जाती है। तब जीवकी निर्मल भावरूप ही सेना बन जाती है, जो शीघ्र ही मोह-पक्षको त्याग चेतन पक्षमें आ जाती है। इस खड्गके अनोखे अभ्याससे सातों प्रकृतिकी सेनाएं शनैः २ अपना रूप छोड़ देती हैं और मोहके युद्ध क्षेत्रमेंसे विदा हो जाती हैं। अब तो इस आत्मवीरने बड़ी भारी विजय कर डाली है। अनादि कालसे आत्माको विह्वल करनेवाले शत्रुओंका नाम निशान तक भी मिटा दिया है। धन्य है! अब तो यह वीर क्षायिकसम्यक्तकी उपलब्धिमें परम तृप्त हो रहा है। स्वरूपाचरण चारित्र अविनाभावी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मित्रोंकी सुसंगतिमें अपने आपको कृतार्थ मानता हुआ निज अनुभूतितियाके स्वरूप-निरखनमें एकाग्र हो रहा है। षट् द्रव्योंकी निज-स्वरूपता-दर्पणमें पदार्थके समान प्रतिभासमान हो रही है, जिधर देखता है समता स्वरसता और शांतताका ही ठाठ दीख रहा है। जैसे भांग पीनेवालेको सब हरा ही हरा झलकता है वैसे ही इस स्वरस पानी उन्मत्तको सब स्वरस रूप ही प्रकाशमान रहा है। मानो यह सारा लोक अनुभव-रससे भरकर परम शांत क्षोभरहित एक सागर है और यह उसीमें डूबा हुआ बेखबर पड़ा है। सम्यक्तरत्न जिसके मस्तकपर चमकता हुआ स्वरूप विपर्यय और कारण विपर्यय रूपी अंधकारको हटा रहा है। इस अपूर्व लाभमें ज्ञान वैराग्य योद्धाओंका सन्मान करता हुआ यह

आत्मधीर स्वरूप तन्मयतामें अटका हुआ **स्वसमरानंदका** स्वाद ले स्वपथ अवरोही हो रहा है।

(२८)

चतुर्थ शुद्ध गुणस्थानावरोही स्वात्मानुभवी क्षायिकसम्य-ग्दृष्टी आत्मवीर संसार स्थित जीवोंके अनादि कालीन तीव्र शत्रु और मोह राजाके परम प्रिय और बलिष्ठ योद्धा सप्त मोह-कर्मपर अमिट, अपूर्व, और निश्चय मोह विध्वंशनी विजयकी उपलब्धिसे अकथनीय आनन्द और मुक्ति-कन्याके अनुपम निर्मल सुख अव-लोकनके उल्लासमें तन्मय हो रहा है और दृढ़ साहस पकड़ मोहकी अवशेष बृहत् कर्मरूप सेनाके विध्वंस करनेको **भेदवि-ज्ञानमई** अटूट खड़गको उठाता है और उसकी निर्मल कान्तिको चमकाता हुआ अति निर्भयतासे मोह-दलमें प्रवेश करता है। विशुद्ध परिणामरूप सिपाहियोंकी मददसे आनकी आनमें **अप्रत्याख्यानावरणी कषायके** चार योद्धाओंकी सेनाको ऐसा दुःखित करता है कि वे विह्वल होकर सामना छोड़ भागती हैं और अति दूर जा भयके साथ छिपकर बैठ रहती हैं। इतने-हीमें **देशचारित्र** योद्धाकी ११ प्रकारकी सेनाएं जो अपत्या-ख्यानावरणीके दलोंके तेजके सामने नहीं आ सक्ती थीं, अब झूमती हुई व आनंद मनाती हुई व त्यागके सुगन्धित रंगसे अपनी मनोहर पोशाकोंसे झलकाती हुई युद्धक्षेत्रमें आके अपने वैराग्यमई शस्त्रोंको चलानेके लिये कमर कसके खड़ी हो जाती हैं और विशुद्ध परिणामोंद्वारा अविभाग प्रतिच्छेदरूप बाणोंकी वर्षा करने लगती

हैं। जिस कारणसे सारी मोहकी सेना शिथिल पड़ जाती है और अशुभलेश्याका रंग बिलकुल मिटकर शुभ तीन लेश्याओंका बदलता हुआ रंग इस आत्मवीरकी सेनामें प्रकाशमान होने लगता है। इस समय मोह दलमेंसे भय खाके निम्न प्रकृतिरूपी सेनाके दलोंने अपनी सेनामें वृद्धि करना छोड़ दिया है और इतनी सेनाओंने युद्धक्षेत्रके पृष्ट भागको अवलम्बन किया है। यह क्षायिक साम्यकी आत्मवीर इस प्रकार श्रावककी क्रियाओंके बाह्य आलम्बनद्वारा अंतरंग स्वरूपाचरण चारित्रमें अधिक २ वृद्धि कर रहा है और कर्मकलंकसे व्यक्ति अपेक्षा आच्छादित होनेपर भी शक्ति अपेक्षा अपनेको शुद्ध निरंजन ज्ञानानंदमय अनुभव कर रहा है। जिस शुद्ध अनुभवके प्रतापसे अपनी विशुद्ध परिणामरूपी सेनाओंको ऐसा सुखी और संतोषी बना रहा है कि उनके भीतर शक्ति बढ़ती चली जा रही है और बारंबार अपने विद्याधर गुरुको नमन करके परमोपकारीके गुणोंको अपनी कृतज्ञतासे नहीं भूलता हुआ हार्दिक भक्ति और साम्यभावरूपी परम विचारशील मंत्रियोंके प्रभावसे अपने उदयमें परम विश्वास धार परम आनंदित होता हुआ और मुक्तिकन्याका प्रेरित अनुभूति सखीसे आत्मारूपी आराममें केल करता हुआ जब उसके गुणरूपी वृक्षोंकी शोभामें टकटकी लगा देखते २ एकाग्र हो जाता है तब सर्व विरसोंसे पृथक्भूत निज रसके अद्भुत और अनुपम स्वादको पा उन्मत्त हो **स्वसमरानन्द**में बेखबर हो जाता है और उस समयके सुख, सत्ता, बोध और चैतन्यके अनुभवमें एकाग्र हो मानो आत्म-समुद्रमें डूबकर बैठ जाता है।

(२९)

परम कल्याणका इच्छक निजगुणानंदवर्द्धक सम्यग्दृष्टी आत्मा मोहमल्लसे युद्ध ठान उसके बलको दबाते २ पंचमगुणस्थानमें पहुंचकर और उसके योग्य संपूर्ण साजसामान बदल एकत्र कर अब इस योग्य हो गया है कि आगे बढ़े और जिस तरह हो सके शीघ्र ही आत्माके बैरीका विध्वंस कर सके। इस वीरने १४८ कर्मप्रकृतियोंके दलोंमेंसे ६१ प्रकृतियोंके दलोंको तो अपने सामनेसे भगा दिया है, केवल ८७ (१०४—अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति) प्रकृतियोंके दल ही युद्धको सामने उपस्थित हैं। इस वीरके विशुद्ध भावरूपी दल भी ऐसे वैसे नहीं हैं। आत्मानुभवरूपी अमृतका पान करते २ इनके अन्दर बलिष्टता ऐसी बढ़ गई है कि ये मोहके दलोंको कोई चीज भी नहीं समझते। इसको अपने कार्यमें अति सावधान देख विद्याधर गुरु इसको पुकार कर कहते हैं—अरे वीर! साहस कर, प्रमाद चोरके वशमें न पड़, अब तू मोहके दलकी भी इष्ट चीजको जो तेरे पास हो अपने पाससे निकाल और सर्व मूर्छा और उसके कारणोंको मेट, शरीर मात्र परिग्रहका धारी रह और निर्द्वन्द्व विकार रहित होकर मोहके दलोंके पीछे निरन्तर ध्यानका अग्निवाण फेंक। इस शिक्षासे द्विगुणित साहस पाकर यह वीर आत्मा उठता है, कमर कसता

है और अन्य सर्व ओरसे चित्त हटा कर अपने दलोंके दृढ़ कर-
नेमें उपयुक्त हो जाता है, श्रीविद्याधर गुरुके समीप सम्पूर्ण परि-
ग्रह भारको त्याग बालकके समान विकार रहित होता है और
केशोंका लोंचकर पंचमहाव्रत रूपी महान सेनापतियोंकी सुसं-
गति प्राप्त करता है । इनकी मददका मिलना कि यकायक प्रत्या-
ख्यानावरणी कषायोंके दल दबकर बैठ जाते हैं । इस वीरका
प्रयाण **सातवें गुणस्थानमें** हो जाता है । जिस जोरके साथ
यह इस स्थलपर आता है उसी जोरके साथ दृढ़तासे जम जाता
है, और सारे मोहके दलोंकी हिम्मत हरा देता है । उत्तम धर्म
ध्यान शस्त्रके बलसे सर्व कर्मोंको कम्पायमान रखता हुआ आप
अपने अंतरंगमें सर्व प्रमादको हटा ऐसा हुल्लासमान रहता है कि
जिसका वर्णन करना असंभव है । आत्माकी शुद्ध परिणतिकी
भावनामें तल्लीनता प्राप्त कर और अपनेको रूपातीत निरंजन,
निर्विकारी, परम गुणधनी , निजामृतसागर और अनंत गुणोंका
आकर अनुभव कर जो आनन्द प्राप्त कर रहा है वह ज्ञानीके अनु-
भव हीके गोचर है । इसकी सारी निर्बलता इस समय दब गई
है । यह वीर आत्मा समता रसके श्रोतमें ऐसा डूब रहा है कि मोह
शत्रुके दल भी इसे देख आश्चर्य करते हैं । इसकी इससमयकी
शोभा निराली है, मुक्तितिया भी इस छविके निरखनेकी
उत्सुक हो रही है । धन्य है यह वीर जिसने स्वपुरुषार्थ बलसे
ऐसा उद्योग किया कि दीन हीन दरिद्रीसे आज परम धनका धनी
स्वसमरानन्दका भोगी हो गया है ।

(३०)

परमात्मपदारोही, ध्यानमग्न ध्याता ध्यान ध्येयकी एकतामें तन्मय, स्वरूपावलम्बी सप्तम गुणस्थानी वीर आत्मा किस दृश्यका आनन्द भोग रहा है, इसका पता पाना ही दुर्लभ है, क्योंकि जिस समय वह निज कार्य्यमें तन्मय है उस समय वह वचनके प्रयोगसे रहित है, और जब वचन कल्पनामें पड़ता है तब उस दृश्यको अपने सामने नहीं पाता। इसलिये यही कहना होगा कि जो अनुभवे सो भी नहीं कह सक्ता और जो शास्त्रद्वारा जाने सो भी नहीं कह सक्ता। हां जो अनुभव करता है–आत्माका आस्वादी होता है, वह आस्वादसे च्युत हो जानेपर अपनी स्मृतिसे इस बातको जानता है कि अनुभव बड़ा ही आनंदमय होता है, पर उस आनन्दके लक्षणको न तो वह भोग ही रहा है और न वह कह ही सक्ता है। और यदि वह कहनेका प्रयत्न करे तो संभव है कि वह अनेक दृष्टांता दार्ष्टांतोंसे उस श्रोताको सांसारिक इन्द्रियजनित सुखको सुख माननेसे हटा दे, परन्तु उसके हृदयमें उसके वचनोंके ही द्वारा विना स्वअनुभव पैदा हुए उस अतीन्द्रिय सुखका झलकाव हो जाना अतिशय असंभव है।

स्वरमणी–शिवरूपिणीकी आशक्तता, उसके स्वरूप स्मरणमें तन्मयता, निराकुलतासे उसी विचारमें थिरता, अमृतमई रसकी पेयता इस सप्तम क्षेत्रमें इस आत्मवीरको ऐसी प्राप्त हो गई है कि मोह शत्रुके सुभट ४ संज्वलन कषाय और ९ नोकषाय युद्धक्षेत्रमें इसके सन्मुख हो शस्त्र चलाते हैं, पर उनके निर्बल हाथोंसे फैंके हुए शस्त्र उस वीरके ऊपर ही ऊपर लगाकर गिर

जाते हैं; उसके खास भावरूपी तनपर अपना घाव नहीं कर सके। जब सर्वसे प्रबल सेनापतियोंकी यह दशा, तब अन्य सैन्यगणोंके प्रयोग कब काममें आ सक्ते हैं? यह वीर स्वसत्तामें ठहरा हुआ निज द्रव्यके अनुपम अनेक सामान्य और विशेष गुणरूपी रत्नोंको परख २ परम तृप्त हो हो रहा है। इस समय इसको यह अहंकार है कि मैं अटुट धनका धनी-निज आत्मविभूतिका स्वामी हूं। मेरे समान त्रैलोक्यमें सुखी नहीं। मैं जगतके अन्य सम्पूर्ण द्रव्योंकी व जीवोंकी भी सत्तासे भिन्न, पर निज स्वभावसे अभिन्न हूं। मैं अकलंकी कर्मरूपी कालिमासे परे हूं। मेरे कर्म, नौकर्म, द्रव्यकर्मसे कोई नाता नहीं है। मैं एकाकी चित्पिंडरूप स्वच्छ स्फटिक समान ज्ञाता दृष्टा हूं। यद्यपि यह विकल्प भी उस स्वानुभवमें स्थान नहीं पाते, परन्तु वक्ताको उस अनुभवके द्रश्यकी दशा दिखलानी है, इससे उस निराकुल थिरभावको इन विकल्पों ही के द्वारा कथन किया जाता है। स्वसंवेदीको स्वरसवेदनमें विकल्प नहीं, आकुलता नहीं, खेद नहीं। इस अवस्थामें देख मोह राजाको बड़ा ही आश्चर्य होता है कि अब मेरी प्राबान्यता जानेवाली है, अब इसको इस क्षेत्रसे गिरानेका फिर योग्य प्रयत्न करना चाहिये। वह मोह युद्धक्षेत्रमें आता है और इस तरह ही सुभटोंको ललकारता है, डांटता है और फटकारता है। मोहकी प्रेरणासे प्रबलताको धार दीनताको छोड़ ज्यों ही वे तीव्र हृदयवेधक बाण छोड़ते हैं उस विचारेका उपयोग विचलित हो जाता है और आनकी आनमें वह सातवेंसे छठेमें आ पहुंचता है। जो विकल्पोंकी तरंगें रुक रहीं थी वे एकाएक उठने लगती हैं,

घमसान युद्ध फिर प्रारम्भ हो जाता है। उधर मोहके बाण, इधर वीरके विशुद्ध परिणामरूपी बाण दोनों खूब चलते हैं। परन्तु यह वीर, धीरवीर तुरंत ही अपने गुरु विद्याधरको याद करता है। ज्यों ही वे आते हैं, अपूर्व विशुद्ध परिणामोंकी सहायता देते हैं कि यह प्रमादीसे अप्रमादी हो जाता है और फिर सातवीं भूमि पा लेता है। वे विचारे १३ सुभट अपनासा मुंह ले रह जाते हैं। अपना बल चलता न जान दीन उदास हो जाते हैं। यह धीरवीर निजगुणानंदी अद्‌भुत स्वादके अनुरागमें मस्त हो जाता है, सब सुध बुध मानो विसरा देता है और यहांतक स्वानुभूतिसे एकमेक रमणता पा लेता है कि इसके सारे अंग प्रत्यंग वचन मन सब इससे मानों परे हो जाते हैं। यह कायोत्सर्गमें डटा हुआ आप ही आपको अपनेसे ही अपनेमें अपने लिये देखा करता है और उसी समय अपनेसे ही उत्पन्न स्वामृत रसको पिया करता है। धन्य है यह स्वरूपानन्दी! इस स्वसमरमें दृढ़तासे लवलीन यह भव्य प्राणी सर्व आकुलताओंसे पृथक् निराकुल **स्वसमरानन्द**को भोग परमाल्हादित हो रहा है।

(३१)

मोह राजासे युद्ध करते २ यद्यपि चिरकाल हो गया है, तो भी साहसी चेतन अपने बलमें पूर्ण विश्वास रखता हुआ मोहके विध्वंशमें पूर्णतासे कमर कसे हुए अपनी सातवीं गुणस्थान रूपी भूमिमें बैठा हुआ अपने उज्वल परिणामोंकी सेनासे मोहके कर्म रूपी दलोंको निर्बल बना रहा है। इस समय यह वीर अपने स्वरूपमें व अपनी श्रद्धामें अच्छी तरह तन्मय है। जगत्‌के यो-

द्धाओंको युद्ध करते हुए खेद होता है, मनमें कषायकी कलुषता होती है पर इस वीरको न खेद है न कलुषता है; किन्तु इस सबके विरुद्ध इसके परिणामोंमें अपूर्व शांति और आनन्द है। जिस स्वानुभूति-तियाके लिये इस वीरका इतना परिश्रम है उसीमें गाढ़ रुचि व प्रेमको क्षण २ में आनन्द सागरमें निमग्न रखता है।

यह लीन है-अपने कार्य्यमें कुशल है, तौ भी मोहके संज्वलन कषाय रूपी वीरोंने जो अभी २ अति निर्बल हो गए थे अपनी तेजी दिखलाई और ऐसी चपेट मारी कि उनके जोरके सामने चेतनके उज्ज्वल परिणाम दबे और वह यकायक छठे गुणस्थानमें आगया। यद्यपि यहां उतनी दृढ़ता नहीं है, तौभी चेतन अपने कार्य्यमें मजबूत है। यहांसे नीचे गिरानेका यत्न शत्रुके दल भले ही करें पर इसके दृढ़ दलोंके सामने उनका जोर नहीं चलता। चेतन जब अपने दलोंका शुमार करता है तो देखता है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह यह पांच बड़े २ सेनापति अपनी वीरतामें किसी तरह कम नहीं है।

निज सुख सत्ता चैतन्य बोध रूपी निधिको किसी भी प्रकारसे भ्रष्ट न होने देनेवाला अहिंसा महाव्रत है। सत्य यथार्थ निज स्वरूपकी निर्मलताको कायम रखनेवाला सत्य महाव्रत है। निज विभूतिके सिवाय अन्य किसीके कोई गुण व पर्यायको नहीं चुरानेवाला अस्तेय महाव्रत है। निज ब्रह्मस्वरूपमें थिरताके साथ चलनेवाला ब्रह्मचर्य्य महाव्रत है। और पर भावोंका त्यागरूप निज भावोंमें समता विधायक परिग्रह त्याग महाव्रत है। इसी ही

तरह पांच समितिकी सेनाएं भी बड़ी ही अपूर्व हैं, जो सदा पांच महाव्रत रूपी सेनापतियोंकी रक्षा किया करती हैं। निज जीव सम समस्त जीवोंका अनुभव कर निज चरण प्रवृत्तिसे पर जीवोंको बाधासे बचानेवाली ईर्य्या समिति है। कर्कश कठोर वचन वर्गणाओंसे पर जीवोंको बाधा होती है-ऐसा विचार सदा समता रस गर्भित शांत ध्वनिको अंतरंगमें फैलाकर निज तत्त्वकी सत्यताको कायम रखनेवाली भाषा समिति है। व्यवहारिक शुद्ध आहार वर्गणाओंके ग्रहणसे केवल परकी तृप्ति जान निज अनुभवमई परम शुद्ध और स्वादिष्ट रसका आहार अपने आपको करा कर तृप्ति देनेवाली एषणा समिति है। व्यवहार प्रवर्त्तनमें शुभोपयोग द्वारा वर्तते हुए बंधकी आशंका कर निज उपयोगको अति सम्हालकर निज भूमिसे उठाते हुए व निज गुण व पर्यायके मनन रूपी गृहणमें प्रवर्तते हुए निज वीतराग परिणतिको रक्षा देनेवाली आदान निक्षेपणा समिति है। निज आत्म सत्तामें बैठे हुए कर्म मलोंको अपनेसे हटाकर उनको उनके स्वरूपमें व आपको अपने स्वरूपमें निर्विकार रखनेवाली प्रतिष्ठापना समिति है। ऐसी अपूर्व समिति रूपी सेनाओंके सामने शत्रुकी सेना क्या कर सक्ती है। पंचेन्द्रिय निरोधरूपी सेना भी बड़ी प्रबल है। यह प्रबल शत्रुओंके आस्रवोंको रोकनेवाली है। स्पर्श इन्द्रिय पर है, पुद्गल मय है, विनाशीक है। मैं स्वयं चैतन्य स्वरूप अविनाशी हूं-ऐसा अनुभव प्रधानी उपयोग निजस्वरूपके सिवाय अन्यको स्पर्श नहीं करता हुआ चेतनकी सेनाकी दृढ़तासे रक्षा करता है। रसना इन्द्रिय पुद्गलमई रसोंके आधीन है, कषायोंकी दासी है।

आत्म प्रभुसे विलक्षण है-ऐसा जान ज्ञानोपयोग सर्व मिष्टादि रसोंका राग त्याग आत्म समुद्रमें भरे हुए पूर्णानन्द रूपी निर्मल रसको लेता हुआ परम तृप्त रहता है और किसी भी शत्रुकी सेनाके बहकानेमें नहीं पड़ता।

घ्राण इन्द्रिय जड़ वस्तुओंकी गंधके आधीन हो हर्ष विषाद करती है। इसकी यह परिणति वैभाविक है। मेरे स्वभावसे सर्वथा भिन्न है-ऐसा जान चेतनकी ज्ञान चेतना सर्व पर वस्तुओंके सामान्य स्वभावको वीतरागतासे देखती हुई अपूर्व सुगंधित निज आत्म रूपी कमलकी मनोहर स्वानुभूति रूपी गंधमें भ्रमरीकी तरह उलझकर लीन हो जाती है और पर पदार्थके गंधके मोहमें न पड़ शत्रुओंके आक्रमणोंसे सदा बचती रहती है। चक्षु इंद्रिय पुद्गल परमाणुओंका संघट्ट है। अपनी पुद्गलमई परिणतिसे स्थूल पुद्गलोंको देख देख हर्ष विषाद करती हुई शत्रुओंको अपने पास बुलाती है-ऐसा जान ज्ञान दृष्टि सम्हलती है और न देखने योग्यकी परवाह न कर देखने योग्य अत्यन्त सुन्दर निज शुद्धात्म रूपको व अन्य आत्माओंके परम मनोहर शुद्ध स्वरूपको देखनेमें लीन होती हुई, अपूर्व आनन्द प्राप्त करती हुई ऐसी चौकसी रहती है कि इसकी सेनाके पहरेके सामने किसी भी शत्रुसेनाकी मजाल नहीं जो इस चेतनकी रणभूमिमें प्रवेश कर सके।

कर्ण इन्द्रिय स्वयं जड़ है। भाषा वर्गणामई जड़ शब्दोंको ग्रहण कर नाना प्रकार परिणति करती है। शत्रुओंको बुलाय कर चेतनकी हानि करती है, ऐसा जान भाव श्रुतज्ञान अपने अनुभव रूपी खड्गको लिए हुए मुस्तैद हो जाता है और ध्वनि सम्बन्धी

संकल्प विकल्पोंकी परवाह न कर अपने निर्विकल्प स्वरूपके जानन माननमें तल्लीन रहता हुआ निज स्वामी चेतनको शत्रु दलसे हर तरह बचाता है।

इस तरह पंचेन्द्रिय निरोध रूपी सेनाए अपना कर्तव्य भले प्रकार करती हुई चेतन रूपी राजाकी सेवा बजा रही हैं।

उधर देखा जाता है तो छह आवश्यक क्रियाओंकी गंभीर सेनाएं अपना ऐसा संगठन किये हुए हैं कि जिससे चेतनको अपनी सेनाका पूर्ण विश्वास है।

प्रतिक्रमणकी क्रिया पिछले दोषोंको हटाती हुई, जब अपने निश्चय स्वरूपमें परिपक्व हो जाती है तब चेतनकी भूमिमें शुद्धता स्वच्छता व मनोहरता ही दीखती है और ऐसी अपूर्व छटा झलकती है कि मानों चेतनकी सर्व सेनाओंमें अमृत–जल ही छिड़का हुआ है। यह दोष निर्मोचनी सेना अपनी दृढ़तासे दोषजनित शत्रु दलोंके आगमनको रोके रखती है। प्रत्याख्यानकी क्रिया आगामी दोषोंसे रागभाव छुड़ाती हुई अपने निश्चय स्वरूपमें रहकर चेतनको निःशंक रखता है और उसे अपनी सत्ता व उसकी शक्तिका पूरा २ उपयोग करनेकी स्वतंत्रता प्रदान करती है। यह निर्मल सेना भविष्यसे आनेवाले शत्रु दलको नहीं आने देती है।

वंदना क्रियाकी सेना जब अपनी व्यवहारकी शिथिल प्रवृत्तिमें थी तब कर्म शत्रुओंके लिये घर कर दिया करती थी, परन्तु अब यह सेना अपने शुद्ध आत्म स्वरूपमें ही लौलीन है, उसकी पूजामें ही तन्मय है, चेतनको शुद्ध भावमें जागृत रखते हुए यह सेना भी शत्रुओंके आक्रमणसे बची रहती है।

संस्तव क्रियाने अपने असली रूपको सम्हाला है, अपने ही शुद्ध गुणोंके अनुभव रूपी स्तुतिमें भीजी हुई चेतनकी सर्व सेना-ओंमें ऐसी सुन्दरता फैल रही है मानो सारी परिणाम रूपी सेनाको किसी अपूर्व विजयके लाभमें शांतमय पुरस्कार ही प्राप्त हुआ है।

यह संस्तव क्रिया चेतनको स्वस्वरूप व स्वबलके स्मरणमें सावधान रखती हुई मोहके मनोहर ज्ञानरूपी जालमें पड़नेसे बचाती है।

सामायिक क्रियाकी सेना तो बहुत ही बहारदार है। इसके सर्व योद्धाओंकी सूरत एक सी परम शांतमय और मनोहर है। सर्वका डीलडौल भी बराबर है। पोशाक भी सर्वकी एकसी श्वेत रंगकी है। यह सेना चेतनकी सारी सेनाओंकी जान है। इस सेनाके योद्धाओंके बान भी बड़े तीक्ष्ण व एक साथ चोट देनेवाले हैं, जि[illegible]से कर्मशत्रुके दलके दल स्वाहा हो जाते हैं। यह परम स्वात्मगुणानुरागिणी वीतरागताकी कांतिसे चमकनेवाली सामायिक क्रिया चेतनको अपनी शुद्ध भूमिमें दृढ़ताके साथ स्थिर रखनेवाली है, और ऐसी तेजशाली है कि इसके सामने शत्रुका एक भी योद्धा चेतनके सेनाकी भूमिकामें प्रवेश नहीं कर सक्ता।

कायोत्सर्ग क्रियाकी सेना अपनी दृढ़, ऊंची, एकता, शांतता व निज मनन रूपी पताकाको फहराये हुए चेतनकी सारी सेनाकी रक्षाके लिये दृढ़ स्तंभ स्वरूप है। इस क्रियाके प्रतापसे चेतन अपने सर्व शुद्ध परिणामोंके योद्धाओंके बलोंको एक साथ अनुभव करता हुआ परम तृप्त रहता है और ज्यों २ इस क्रियाका सहारा

पाता है, कर्म शत्रुओंके विध्वंस करनेका उत्कट साहस जमाता जाता है ।

इस तरह छह आवश्यक क्रियाओंकी सेनाओंको देखकर चेतन वीर परम प्रसन्न हो रहा है । प्रमत्तगुणस्थानमें ठहरा हुआ चेतन अपनी सर्व सेनाका अलग २ विचार करता हुआ अपने बलको पुष्ट जान और मोह शत्रुसे विजय पानेका पक्का निश्चयकर **स्वसमरानन्द**में तृप्त हो परमानन्दित रहता है ।

(३२)

चैतन्य राजा अपनी पूर्ण शक्तिको लगाकर व अपनी २८ मूल गुण रूपी सेनाका विचार कर यकायक अपने उज्जल परिणामरूपी शस्त्रोंकी सम्हाल करता है और बातकी बातमें षष्टम श्रेणीसे सातवीं श्रेणीपर पहुंच जाता है इस श्रेणीपर पहुंचते ही अब तो यह अपने समरके एक तानमें ऐसा लीन होता है कि इसे और कोई ध्वनि ही नहीं सूझती है। यह क्षायिक सम्यग्दृष्टी है । स्वतत्त्वका अकंप निश्चय रखनेवाला है । अपनी शक्तिकी व्यक्तिमें व मोहके जीतनेमें अटूट परिश्रम कर रहा है । यह वीर आत्मा अब सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें तन्मय है। अब नीचे गिरनेका नहीं, ऊपर ही ऊपर चढ़ता है। इस समय मोह शत्रुकी सेनाएं जो ६३ प्रकृतिरूप छठेमें आकर जमा होती थी सो उनमेंसे ६ का आना बन्द हो गया । जैसे अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक केवल ५७ ही आती हैं। हाँ जब यह आत्मा स्वस्थान अप्रमत्त अवस्थामें होता है तब इसके आहारक शरीर और आहारक अंगोंमें पांच भी आते हैं। इस

समय चेतन राजाके सामने मैदानमें खड़ी हुई ८१ मेंसे आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, और स्त्यान गृद्धि निकाल करके ७६ ही प्रकृतियोंकी सेना है, तो भी मोहके शुद्ध क्षेत्रके अड्डेमें १४८ में से ३ दर्शनमोहनी, ४ अनंतानुबंधी कषाय, नरक व तिर्यंचायु इस तरह ९ निकाल कर केवल १३९ प्रकृतियोंकी कुल सेनाएं जमा हैं। अब भी इस उद्योगी वीरात्माको इन सर्व सेनाओंको विध्वंश करना है—बड़ा भारी काम है। तो भी यह घबड़ाता नहीं, इसके परिणामोंमें बड़ी भारी शांतता है, बड़ी भारी वीरागता है, बड़ा ही ऊंचा धर्मध्यान है। रूपातीत ध्यानमें लय है जहां ध्यान, ध्याता, ध्येयका विकल्प नहीं है। इस समय इसके उपयोगरूपी दिशामें परमशांत निर्मल आत्मचन्द्रमा अपनी शुद्ध गुणकिरणावलीको लिये हुए झलक रहा है। उस चंद्रमासे जो अतिशांत स्वानुभवरूपी रस टपक रहा है उसे पान करते हुए इस ध्यानीको परम तृप्तता हो रही है। उस ध्यानमें प्रमाण, नय और निक्षेपके सर्व ही विकल्प अस्त हो गए हैं। इतने ही में मोह नाशक अधोकरण लब्धिके समय २ अनंत गुणी विशुद्धताको लिये हुए परिणाम रूपी सेनाओंका समागम होता है। यद्यपि यह सेना इतनी बलवती नहीं है जैसी अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणकी सेनाएं होती हैं; तो भी मोह शत्रुको छकानेके लिये व उसे रुलानेके लिये बड़ी ही प्रबल हैं। इन परिणामोंका अनुभव कर वीरात्मा त्रिगुप्तरूप अति प्रौढ़ दुर्गमें बैठा हुआ मोहके झपेटोंसे बिलकुल बचा हुआ है। उसको अपनी अनुभूति तियासे सम्मेलन करनेका परम सुंदर अवसर है। वास्तवमें यह अनुभूति सखी ही शिव

सुन्दरीकी भेट कराने वाली है। बिना इसके बीचमें हुए कोई उस अपूर्व सुंदरीसे भेट ही नहीं कर सक्ता।

बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि यह स्वसमरानन्दी आत्मा स्वानुभूतिका भोग भी करता जाता है और युद्ध भी करता जाता है। यद्यपि लौकिक अवस्थामें दोनों क्रियाओंका एक साथ युगपत होना सर्वथा असंभव है, तथापि पारलौकिक अवस्थामें दोनोंका एक साथ ही सम्बन्ध है, जो निजानन्दी है। वही मोह विजयी है। जो स्वरसका पान करनेवाला है वही मोह संहारक है। जो भव सम्बन्धी क्लेशोंसे अतीत है वही भवमें भ्रमण करानेवाले मोहको जीत सक्ता है। जो निज भूमिमें स्थिर है वही अपने निशानोंसे मोहकी सेनाओंको चूर चूर कर सक्ता है। इस तरह यह सातिशय अप्रमत्ती आत्मा परम वीरताके साथ अपने प्रेम रसको पीता हुआ व अपने स्वभावमें लय रहता हुआ मोहके सामने डटा हुआ **स्वसमरानन्दका** परमसुख अनुभव कर रहा है।

(३३)

सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें विराजनेवाला साधु आत्मा मोहको विजय करने ही वाला है। इसके परिणामरूपी उज्वल बाणोंकी ऐसी तेजी है कि मोहकी सेनाको शीघ्रही विध्वंश करनेवाला है। इसके निर्मल ध्यानकी खड्गके सामने किसीका जोर नहीं चलता। यकायक तेजीसे धर्म ध्यानकी खड़गको उठाते ही मोह शत्रुके दल जो सामने खड़े हुए हैं कांप जाते हैं। संज्वलन क्रोध मान माया लोभ और नोकषाय सेनापतियोंकी सेना यकायक

घबड़ा जाती है। उनके घबड़ानेसे ही उनको बहुतही निर्बलता आ जाती है। वे चेतन राजाके रास्तेको रोककर खड़े थे, पर उनमें कायरताके आते ही वीर आत्मा अपनी सेनाओंको बढ़ाता है और झटसे आठवें गुणस्थानमें प्राप्त हो जाता है। अपूर्वकरण गुणस्थानमें आते ही चेतन राजाके पास ऐसे योद्धा जो पहले नहीं आए थे इस चेतनकी वीरता देख आते हैं और बड़ी ही उमंगसे इसको अपनाते हैं। अब इस वीरने धर्मध्यानकी खड़गको अकार्य्य-कारी जान छोड़ दिया और दृढ़ताके साथ पृथक्-वितर्कविचार नामक शुक्लध्यानकी खड़गको हाथमें ले लिया है। इस पदमें यह वीर बड़ी ही एकाग्रतासे निर्मल भावोंके बाण चलाता है, यद्यपि बीच २ में मन वचन, काय योगोंकी पलटन होती है, व श्रुतके पद व अर्थका व एक गुणसे अन्य गुणका परिवर्तन होता है तो भी इसको मालूम नहीं पड़ता। यह तो अब इस धुनमें है कि किसी तरह मोहको नाशकर भगादूं। यद्यपि यह वीर इस उद्यममें है तथापि मोह भी गाफिल नहीं है। सातवें पदमें मोहकी सेनामें ९७ प्रकृतियोकी सेना बढ़ती थी। अब वहां केवल देवायुकी प्रकृति घट गई। इस क्षपक श्रेणीमें भी ९६ प्रकारकी सेना आरही हैं। युद्धमें सामना किये हुए ७ वेंमें ७६ प्रकृतियोंकी सेना थी अब सम्यक्प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन रुक गई केवल ७१ प्रकृतियोंकी सेना है, जब कि मोहरा-जाकी युद्ध भूमिमें १४८ प्रकृतियोंकी कुल सेनाएं हैं, देवायुकी नहीं है। जो साहसी होते हैं वे बातकी बातमें बहुत कुछ कर डालते हैं। धन्य है वीर आत्मा! अब इसकी भावना सफल होनेको

है। अब यह शीघ्र ही मुक्ति कन्यका का वर होगा। अब इसके भीतरी जोशका पार नहीं है। अब यह महान आत्मा वीर रसको झलकाता हुआ **स्वसमरानन्दका** अनुपम रस पी रहा है।

(३४)

अपूर्वकरण गुणस्थानमें बैठा हुआ वीरात्मा अपनी शुद्धोप-योगकी दशामें अनुपम अनुभव रसका पान करता हुआ किस तरह उन्मत्त है उसका वर्णन नहीं हो सक्ता। जैसे कोई मनुष्य दूरी-पर बैठे हुए अपने मित्रको मिलनेकी मनोकामनासे बढ़ा चला जाता हो और जब वह मित्र निकट रह जाता है तब अपूर्व आनन्दमें भर जाता है उसकी यह आशालता खिल उठती है कि अब मैं शीघ्र ही मित्रसे मिलनेवाला हूं, उसी तरह इस वीरात्माकी दशा है। यह अब क्षपकश्रेणीका नाथ है। मोह राजाकी हिम्मत इसके सामने पस्त हो गई है। इसको अच्छी तरह भास रहा है कि यह अपनी केवलज्ञानरूपी ज्योतिसे शीघ्र ही मिलेगा। शुक्लध्यानकी निर्मल तरगें अव्यक्त रूपसे उठ २ कर इसके चित्तको धो रही हैं। इस वीरकी उज्वल परिणामरूपी सेना दिनपर दिन अति दृढ़ता और साहसमें भरती चली जाती है। यह बात सच है कि जिसकी एक दफे विजय हो जाती है उसका साहस उमड़ जाता है, पर जिसकी कई दफे विजय पताका फहराए उसके साहस व उमंगका क्या कहना। यह वीर संयम अश्वपर चढ़े हुए, उत्तम क्षमाका बख्तर पहरे हुए, ध्यान खड्ग लिये हुए समताके मैदानमें इस अनुपमतासे क्रीड़ा कर रहा है और अपनी खड्गकी धाराको चमका रहा है कि मोह वीरकी सेना सामने खड़ी हुई

कांप रही है, उसको साहस नहीं होता कि वह आगे बढ़ सके। यह वीरात्मा स्वसमाधिके नशेमें उन्मत्त होता हुआ अपनी परिणामरूपी सेनाको बड़े वेगसे चलता है और ध्यान खड्गके दाव पेंच इतने वेगसे करता है कि मोहकी सेनाके कई बड़े २ योद्धा चोट खाकर गिर जाते हैं और फिर कभी मुंह न दिखएंगे ऐसी प्रतिज्ञा कर लेते हैं। वे ३६ योद्धा निम्न प्रकार हैं निद्रा,प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा भय हैं। इन नवीन सेनाओंके हटते ही यह नोवें गुणस्थानमें आजाता है और अनिवृत्ति गुणस्थानी कहलाता है। अब यहां केवल २२ प्रकृतियोंकी सेना ही मोहकी सेनामें आती हैं। मैदानमें ८ वीं श्रेणीमें ७२ प्रकृतियां थी, अब यहां ६ नहीं हैं; अर्थात हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा। केवल ६६ ही अपना नीचा मुंह किये हुए खड़ी हैं। यद्यपि मोहकी रंगकी भूमिमें अब भी १३८ प्रकृतियोंकी सेना पुरानी आई हुई मौजूद हैं। इस समय भी चेतन वीरके पास वही प्रथम शुक्लध्यान रूपी खड्ग है, पर यहां इसकी धार बहुत तीक्ष्ण होगई है। मोहके बलको तोड़ते २ इसकी धार तेज हो गई है। आठवेंमें इसकी धार भी मन्द थी और ध्याताकी स्थिरता भी कम थी, पर यहां स्थिरता अधिक है।

इस वीर साहसीका उत्साह भी ज्यादा है। यह धर्मबुद्धि पवित्र कार्य करनेवाली आत्मा परम पुरुषार्थी है। इसकी तृष्णा भी अगम्य है, इसको तीनलोक व अलोकका राज्य लेना है, इसको सिद्ध अवस्थाकी बराबरी करनी है, इसको तीन लोकके ऊपर अग्रभागमें विराजना है। ऐसा तृष्णातुर शायद ही कोई हो; पर धन्य है इस शुद्धात्मसेवीकी महिमा। यह अपने महान् लोभको रखते हुए भी निर्लोभी है-परम संतुष्ट है-षट्रससे रहित आत्मीक रसका आस्वादी है, आत्मानुभवकी कल्लोलोंमें कलोल करनेवाला है। यह धीर वीर परमात्माकी अकंप भक्तिमें लीन रहता हुआ और मोह शत्रुके दांत खट्टे करता हुआ **स्वसमरानन्दका** अपूर्व लाभ ले रहा है।

(३५)

संयम-अश्वपर आरूढ़ परमोत्साही आत्मा ९ वें गुणस्थानमें ठहरा हुआ जिन अपूर्व परिणाम रूपी सेनाओंका लाभ कर रहा है उनका कथन नहीं हो सक्ता। इन सेना-समूहोंमें एक बड़ी अद्भुतता यह है कि सेनाओंका प्रवाह विलक्षण होनेपर भी उन्हीं सेनाओंके बिलकुल समान हैं, जो ऐसी श्रेणीपर आरूढ़ हरएक वीरात्माको प्राप्त हुआ करती हैं। मोह शत्रुके कषायरूपी योद्धा इन सेनाओंको मुंह देखते ही थरथर कांपते हैं और अंतर्मुहूर्तकी वीतरागकी बाणवर्षासे उनके पैर टिकते नहीं और सबके सब गिर जाते हैं। चेतनवीर अपनी बाणवृष्टिको कम नहीं करता और प्रतिसमय अधिकाधिक वेगके साथ वीतरागताकी शांतमय अग्नियें बर्षाता है, जिनके प्रभावसे कषायोंकी सेनाएं अधमरी होती हुई

प्राणहीन हो जाती हैं। केवल एक लोभ कषायके प्राण नहीं निक-लते। वह अपनी जर्जरी पंजरी लिये हुए स्वांस लिया करता है। शेष कषायोंके मरनेपर केवलसूक्ष्म लोभके जीवित रहते हुए यह वीर आत्मा सूक्ष्मसांपराय नामकी दसवीं श्रेणीमें उपस्थित होता है। यहां पुरुषवेद संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभको घटाकर केवल १७ नवीन कर्म–प्रकृतियोंकी सेना ही मोहकी फौजमें आती है; जबकि रणक्षेत्रमेंसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, ऐसी ६ सेनाओंकी सत्ता ही निकल जाती है। केवल ६० कर्म प्रकृतियोंकी सेनाएं ही ६६ में से रह जाती हैं। जबकि मोहके पास उसके भंडारमें १०२ सेनाका ही सत्व रह जाता है ९ मी श्रेणीमें १३८ का था, उसमेंसे निम्नलिखित छत्तीस प्राण रहित हो जाती हैं। तिर्यग्गति १, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी २, विकलत्रय ३, निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला १, स्त्यानगृद्धि १, उद्योत १, आताप १, एकेन्द्रिय १, साधारण १, सूक्ष्म १, स्थावर १, प्रत्याख्यानावरणीकषाय ४, अप्रत्याख्यानावरणीकषाय ४, नोक-षाय ९, संज्वलन क्रोध १, मान १, माया १, नरकगत्यानुपूर्वी १।

इस तरह यह वीरात्मा मोहपर विजय पाता हुआ अपने महापराक्रमशाली तेजको धारे हुए और प्रथम शुक्लध्यानकी खड्गको तेज किये हुए अभेद रत्नत्रयमयी स्वसंवेदन ज्ञानद्वारा निज आत्माके शुद्ध परम पारणामिक स्वरूपमें लीन होता हुआ परसे उन्मुख होते हुए भी परका किञ्चित् विचार न करके स्व स्वरूपके अमृतमई जलसे भरे हुए समुद्रमें गोते लगाता हुआ सिद्ध सुखके समान परम अतीन्द्रिय स्वसमरानंदको अनुभव करता हुआ प्रमुदित हो रहा है।

(३३)

वीर आत्माने परिश्रम करते २ शत्रुके विजयमें कोई कसर नहीं रक्खी है,दसवें गुणस्थानमें बैठा हुआ यह वीर पृथक्त्ववितर्क विचार नामा शुक्लध्यानके द्वारा छोड़े हुए विशुद्ध परिणामरूपी बाणोंसे कर्मशत्रुओंको महान खेदित कर रहा है बातकी बातमें सूक्ष्म-लोभ रूपी योद्धा, जो अधमरी दशामें पड़ा हुआ श्वास गिन रहा था, अपने प्राणोंको त्यागता है और तब मोह राजा मय अपने कुटुम्बके नाश हो जाता है। उस समय उस ज्ञानी आत्माको क्षीण मोह गुणस्थानी कहते हैं। मोहके विजयसे जो इस वीरको हो रहा है वह वचनातीत है। अब यह स्वानुभूति रमणीके रमनमें ऐसा एकाग्र हो गया है कि इसका उपयोग अन्यत्र पलटता ही नहीं। यद्यपि मोह राजाका मरण होगया है तथापि उसकी सेनाके ७ कर्मरूपी योद्धा अभीतक सजीवित हैं। यद्यपि वे इसके स्वानुभव विलासमें विघातक नहीं हैं; तथापि इनमेंसे वरणी अनंतज्ञान, दर्शनावरणी अनंत दर्शन, अंतराय अनंतवीर्यके प्रकाशित होनेमें बाधक हो रहे हैं और इस आत्माको पूर्ण सत्त्व भोगनेमें विघ्नकर्त्ता हैं। इस वीरने इन्हींकि संहारके लिये **एकत्त्ववितर्कविचार** नामा द्वितीय शुक्ल ध्यानकी खड्ग सम्हाली है और अंतर्मुहूर्त पर्यंत तक उसके शुद्ध परिणाम रूपी चोटोंकी मार उनको देनेका निश्चय करलिया है। मोक्ष नारीको अब पूर्ण निश्चय हो गया है कि यह वीर शीघ्र ही शिवपुरका प्रभु हो जायगा। इसीके आनंदमें मोह शत्रुके क्षय होने पर विघ्नकी गरजसे नहीं, किन्तु प्रमोद प्रदर्शनार्थ सातावेदनीय कर्म

उमंग २ कर आता है और बिना कोई विकार पैदा किये हुए एक समय मात्र विश्राम कर अपना आदर चेतन राजा द्वारा न पाता हुआ चल देता है। मोह राजाका निमक खानेवाले कर्मोंकी सेनाएं मोहके मरने पर भी युद्धक्षेत्रमें डटी हैं। १० वें में ६० दल थे उनमेंसे सूक्ष्मलोभ, वज्रनाराच और नाराचके नष्ट हो जानेसे केवल ५७ ही दल अति ग्लानित अवस्थामें रहगए हैं। मोह राजाके भंडारमें अब भी १०१ सेनादल पड़ा है। १० वें में १०२ का था उनमेंसे संज्वलन लोभके चले जाने पर १०१ प्रकृतियोंके दलोंका ही सत्त्व है। इस समय इसकी एकाग्रता इसके चित्तको जो साहस, निर्मलता और एकाग्रता प्रदान कर रही है उसका अनुभव उसी ही वीरको है जो कोई अपने शत्रुका संहार कर डाले और फिर यह भरोसा हो कि वह सदाके लिये विजयी हो गया तो उसके हर्षका क्या ठिकाना! जिस मोहके रहते हुए कर्मोंकी सेनाएं आ आकर चेतन राजाकी शक्तियोंको दबाती थीं और इसको अपने स्वरूपसे गिराकर पर-पुद्गलजनित पर्यायों व अवस्थाओंमें बावला कर देती थीं, वह मोहराजा जब चला गया तब आत्माके प्रभुत्वका क्या ठिकाना! यह वीरधीर आत्मा अपनी शक्तिको सम्हाले हुए पूर्ण एकचित्ततासे अपने गढ़ पर खड़ा हुआ बड़ी ही धीरता और स्वप्रभावसे अपने ही अंतरंगमें **स्वसमरानंद**का उपभोग करता हुआ दीप्तमान हो रहा है।

(३७)

मोहविजयी द्वादश गुणस्थानावरोही वीरात्मा निर्विकल्प समाधिकी एकतारूपी द्वितीय शुक्लध्यानकी अति विशुद्ध परिणा-

मरूपी चोटोंसे उन कर्मरूपी सेनापतियोंको विह्वल कर रहा है जो मोह राजाके नष्ट होनेपर भी अपने आप मरना तो कबूल करते हैं, परन्तु पीठ दिखाना उचित नहीं समझते । अंतर्मुहूर्तके लगातार प्रयत्न करनेसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अंतराय कर्मोंकी सेनाएं अपनी वर्तमान पर्यायको छोड़कर जड़—पत्थरके खंड समान वेकाम हो जाती हैं । इनके नष्ट होते ही इस वीरात्माको अर्हंत परमात्माके शांतमय पदसे अलंकृत किया जाता है। इस अभूतपूर्व दशाके पाते ही अंतरंग और बहिरंगकी अटूट लक्ष्मी प्रभुकी सेवाके लिये आजाती है । अब तो इस वीरकी अपूर्व दशा है । इसके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं । अब यह कृतकृत्य हो गया है, इसने इच्छाओंका रोग समूल नष्ट कर दिया है, पराधीन, इन्द्रियजनित ज्ञान भी नहीं है, अतीन्द्रिय व स्वाभाविक ज्ञानरूपी दर्पणमें विना ही चाहे अपने स्वभावसे त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्योंकी सर्व पर्यायें झलक रही हैं तो भी उपयोगकी थिरता निज आत्मानुभवमें ही शोभायमान है । यद्यपि परोपकार करनेकी चिंता नहीं है तो भी पूर्वमें भावित जगत उपकारक भावनाके प्रतापसे स्वतः स्वभाव प्रभुकी वचनवर्गणा अबुद्धि पूर्वक किसी कंठस्थ पाठके उच्चारणके समान व निद्रित अवस्थामें वचन स्फूर्तिवत् व विना चाहे अगोंका फडकन व पगोंका अभ्यस्त मार्गमें गमनके समान खिरती है जिसके द्वारा अन्य जीवात्माओंको यह घोषणा प्राप्त होती है कि मोह शत्रुके पंजेमें फसे हुए तुम दुःखी पराधीन, बलहीन और निकृष्ट हो रहे हो, अतएव इस मोहके विजय करनेका इसी उपायसे उद्योग करो जैसा कि हमने किया है ।

इस धर्मोपदेशके प्रतापसे अनेक भव्य जीव निकट संसारी सम्हलते हैं और मोहके जीतनेके लिये वैरी कमर कस लेते हैं।

यद्यपि प्रभु परमात्मा हैं तथापि मोहद्वारा एकत्रित सेनाओंका सर्वथा संगठन मोहके क्षय होनेपर भी अभी दूर नहीं हुआ है। आत्मक्षेत्रमें अधमरी दशामें भी कर्मसेनाएं अड्डा किये हुए हैं। युद्धमें साम्हना करनेवाली उदय होती हुई बारहवें गुणस्थानमें ५७ कर्मसेनाएं थीं। जिनमेंसे ५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण तथा निद्रा और प्रचला इन १६ प्रकृतिरूपीसेनाओंके घट जानेपर ४१ प्रकृतियोंकी सेना अब भी साम्हने मौजूद है तथा तीर्थंकरकी अपेक्षासे ४२ की है। युद्धक्षेत्रकी सत्तामें १२ वें में १०८ सेनाएं थीं। यहां उन्हीं ऊपरकी १६ प्रकृतियोंके घटानेपर अब भी ८५ प्रकृतियोंकी सेना पड़ी हुई है। यहां भी आत्माके प्रदेशोंके सकंप होनेके कारण सातावेदनीय कर्मकी नवीन सेना भी आती है, परन्तु आकर चली जाती है, प्रभुको मोहित नहीं कर सक्ती। वास्तवमें जब मोह राजाको ही नष्ट कर डाला तब फिर किस कर्मकी शक्ति है जो आत्माको अचेत कर सके। धन्य है यह वीर जिसने अपने सच्चे अटूट पुरुषार्थके बलसे जीवन्मुक्त परमात्माका पद प्राप्त करके **स्वसमरानन्द**के अनुपम लाभ लेनेका मार्ग अनन्त कालके लिये खोल दिया है।

(३८)

परम प्रतापी परमधीर वीर आत्माने अपने साध्यकी सिद्धिमें अपने आत्मोत्साहकी दृढ़तासे पूर्णता प्राप्त कर ली है—यह बात बड़े महत्वकी है। जिस गुणस्थानपर आजानेसे यह आत्मा मुक्ति-

सुन्दरीका नाथ हो जाता है उस अयोग नामके १४ वें गुणस्थान-पर इसने प्रवेश कर लिया है। अब यहां किसी भी नवीन सेना-का युद्धक्षेत्रमें आगमन नहीं होता। तेरहवें गुणस्थानमें ४२ कर्म प्रकृतियोंकी सेनाएं युद्धक्षेत्रमें अधमरी दशामें साम्हना किये हुए थीं। यहां उनमेंसे ३० बिलकुल साम्हनेसे हट गईं, अर्थात् वेदनी १, वज्रवृषभनाराच संहनन १, निर्माण १, स्थिर १, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, सुस्वर १, दुःस्वर १, प्रशस्त विहायोगति १, अप्रशस्त विहायोगति १, औदारिक शरीर १, औदारिक आंगोपांग १, तैजस शरीर १, कार्माण शरीर १, समचतुरस्रसंस्थान १, न्यग्रोध १; स्वाति १, कुब्जक १, वामन १, हुंडक १, स्पर्श १, रस १, गंध १, वर्ण १, अगुरुलघुत्व १, उपघात १, परघात १, उच्छ्वास १, प्रत्येक १, इस तरह ३० के जानेपर केवल १२ प्रकृतियों ही की सेनाएं रह गई हैं, जैसे वेदनीय १, मनुष्यगति १; मनुष्यायु १, पंचेन्द्रिय जाति १, सुभग १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, आदेय १, यशःकीर्ति १, तीर्थंकर प्रकृति १, उच्च गोत्र १; यद्यपि युद्धक्षेत्रमें तेरहवें गुणस्थानकी तरह अंतिम दो समय तक ८५ का सत्व रहता है पर उसी समय ७२ का सत्व विध्वंश हो जाता है और अंतिम समयमें शेष १३ प्रकृतियोंकी सत्ता भी चली जाती है। इस तरह इस गुणस्थानमें आत्मवीरको बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता। जितने समयमें हम अ-इ-उ-ऋ-लृ-ऐसे पांच अक्षरोंको बोलते हैं उतनी ही देर तक यह वीर परम निष्कम्प परम ध्यानरूप अत्यन्त शुद्ध परिणतिको लिये हुए अपने आत्मानन्दमें लीन

रहता है। इसीके प्रतापसे सारी कर्मोंकी सेनाओंकी सत्ता दूर हो जाती है। आत्मवीरके लिये मैदान साफ होजाता है। कहीं कोई भी रिपु योद्धा दिखलाई नहीं पड़ता। सब तरह शत्रुका विध्वंश कर इस वीरने अन्त कालके लिये अपना कोई भी विरोधी नहीं रक्खा जो इसको अपने साध्यसे रंच मात्र भी गिरा सके। अब यह पूर्ण परमात्मा होगया है। शरीरादि किसी भी पुद्गलकी वर्गणाका सम्बन्ध नहीं रहा है। निष्कलंक पूर्णमासीके चंद्रमाके समान पूर्ण प्रकाशमान होगया है। स्वभावसे ही ऊर्ध्व गमन करके यह तीन लोकके अग्रभागमें तनु वातवलयमें जाकर ठहरा गया है। अलोकाकाशमें केवल प्रकाश होनेसे धर्मास्तिकायकी आगे सत्ताके विना यह आगे नहीं जाता। यह सिद्धात्मा होकर ऐसा इच्छारहित, कृतकृत्य और स्वात्मानन्दी हो गया है कि इस परमात्माको अब कोई सांसारिक संकल्प विकल्प नहीं सताते। इसका ज्ञान स्वरूपी आत्मा अपने अंतिम देहके समान उससे कदमें बालसे भी कुछ कम आकारको रखे हुए सदा स्वरूपके अनुपम आनन्द रसका स्वादी रहा करता है, निज शिवतियाके विलाससे उत्पन्न अमृतधाराका नित्य निरन्तराय पान किया करता है। अब इसकी ईश्वरता पूर्ण हो गई है, जिस अटूट स्वधर्मको मोहकी फौजने दबाया था उसको इसने हासिल कर लिया है। इसकी महिमाका अब पार नहीं है। मोह शत्रुसे लड़ते हुए जो समरका आनन्द था वह यहां समरके विजयके आनन्दमें परिणमन हो गया है। इसका आनन्द अब स्वाधीन है। आप ही नाथ है, आप ही शिव सुंदरी है, सिर्फ कथनमें भेद हैं, परन्तु वास्तवमें अभेद है। परम शुद्ध

निश्चय स्वरूपका धर्त्ता होकर यह अब स्वभाव विकाशी हो गया है, औपाधिक गुणोंसे रहित होनेसे निर्गुण है, पर स्वाभाविक गुणोंका स्वामी होनेसे सगुण है । धन्य है यह वीर, धन्य है यह सम्यक्की आत्मा, धन्य है यह रत्नत्रयका स्वामी । अब यह भक्त-जनोंके द्वारा ध्येय है । स्वसमरानंदके फलको पाकर निश्चय शुद्धोपयोगको रखता हुआ यह वीर महावीर परमात्मा होकर जिस अद्भुत स्वजातीय आनन्दका अनुभव कर रहा है उस आनन्दकी झलकको वे ज्ञानी भी प्राप्त कर सक्ते हैं जो इस महावीर परमात्माके गुणोंका अनुभव कर उसके शुद्धोपयोगके पथपर अपने उपयोगको आचरण कराते है । शुभोपयोगमें रुके हुए मनुष्य मुमुक्षु होकर जिस स्वात्मलाभकी फिकर करते हैं वह स्वात्मलाभ सर्व मुमुक्षु-ओंको प्राप्त हो ऐसी इस स्व स्वरूप मननके अभिलाषी लेखककी भावना है । जिस तरहसे इस वीर मिथ्यादृष्टीने अति नीची श्रेणीसे चढ़ कर सर्वोच्च श्रेणीको प्राप्त करके अपने परमात्म पदका लाभ कर लिया है और इस चतुर्गतिमय संसारके भ्रमणसे अपनेको रक्षित कर लिया है । इसी तरह जगत निवासी हरएक स्वभाव विकासका इच्छुक भव्यात्मा उद्यम करके उस परम सुखमयी स्वपदको उपलब्ध कर सक्ता है और भवसागरसे निकलकर अनन्त काल तकके लिये सुखसागरमें मग्न होकर परम सुखको प्राप्तकर सक्ता है । इति-शुभं भवतु-कल्याणं भवतु ।

मिती श्रावण सुदी १ रवि० विक्रम सं० १९७३, वीर सं० २४४२, तारीख ३० जुलाई १९१६ ई.